यामा

महादेवी

भारतीभण्डार
इलाहाबाद

ग्रन्थ-संख्या—१५६

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

तृतीय संस्करण
संवत् २००८
मूल्य १५)

मुद्रक—
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

अपनी बात

यामा में मेरे अन्तर्जगत् के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के यह कहना मेरे लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि ये दिन के हैं तो इन्होंने मेरे हृदय को श्रम से क्लान्त बना कर विश्राम के लिये आकुल नहीं बनाया और यदि रात के हैं तो इन्होंने अन्धकार में मेरे विश्वास को खोने नहीं दिया, अतएव मेरे निकट इनका मूल्य समान है और समान ही रहेगा।

समय को नापने की जो परिपाटी है उसके अनुसार नीहार से लेकर सान्ध्यगीत तक का समय एक युग से भी अधिक है। तब से संसार कितना बढ़ चुका है इसका मुझे ज्ञान है और मेरा जीवन कितना चल चुका है इसका मुझे अनुभव है, परन्तु जीवन के उस तुतले उपक्रम से लेकर अब तक मेरा मन अपने प्रति विश्वासी ही रहा है। मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रान्त होने और चली हुई राह में पग पग गिन कर पश्चात्ताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नहीं मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है, केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये हैं। उस समय के अज्ञातनामा भाव और विश्वास प्रयोग की अनेक कसौटियों पर कसे जाकर, अनुभव की सहस्र ज्वालाओं में तपाये जाकर केवल नाम पा गये हैं। उनकी आत्मा वही रही इसमें मुझे सन्देह नहीं।

बचपन से लेकर सन् २८ तक के अपने प्रयासों का परिचय देना आज सम्भव नहीं क्योंकि उस समय लिखने और खोने के अतिरिक्त उनकी कोई उपयोगिता मुझे ज्ञात नहीं थी। नीहार में सबसे पुरानी रचना सम्भवतः 'उस पार' है। उसकी सहज भाव से लिखी—

विसर्जन ही है कर्णधार
वही पहुँचा देगा उस पार'

आदि पंक्तियाँ आज भी मेरे हृदय के उतनी ही निकट हैं जितनी तब थीं। मानव को मानवता की तुला पर गुरु होने के लिये स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पड़ता है, यह प्रश्न इतने दीर्घकाल से अनुभव के लम्बे पथ को पार कर स्वयं उत्तर बन गया है, परन्तु उसके पहले रूप में निहित सत्य की मुझे फिर नवीन रूप से प्राणप्रतिष्ठा नहीं करनी पड़ी।

इन रचनाओं के सम्बन्ध में ज्ञातव्य समझ कर जो कुछ रश्मि और सान्ध्यगीत में कह चुकी हूँ उसमें मुझे आज भी विश्वास है। इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है इसे मेरा हृदय ही नहीं मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होता है और अविश्वास का भी, परन्तु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा सजीव शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं।

इन रचनाओं में यदि नवीनता होती तो दूसरों को इनके सम्बन्ध में कुछ सुनने की उत्सुकता होती और यदि मेरे दृष्टिकोण को कोई नवीन दिशा मिल गई होती तो उसे स्पष्ट करने की मुझे स्वयं आकुलता होती, परन्तु इन दोनों कारणों के अभाव में मैं पिछला कथन ही दोहराये दे रही हूँ।

१७-८-३९

भाग्य से मैं वह समृद्ध प्रवासी नहीं हूँ जिसके आशातीत विभूति लेकर घर लौटने पर परिचित भी अपरिचित के समान प्रश्न कर बैठते हैं 'क्या तुम वही हो'। प्रत्युत् मेरी स्थिति उस सम्बलहीन वामन जैसी है जो अपनी सारी लघुता समेट कर द्वार पर बैठा बैठा ही नया पुराना हो जाता है।

नीहार के बुद्बुदगान में मैं सभीत-सी भारती-मन्दिर की जिस पहली सीढ़ी पर आ खड़ी हुई थी अब तक वहीं हूँ, क्योंकि न कभी पैरों में अन्तिम सोपान तक पहुँचने की शक्ति आई और न उत्सुक हृदय ने लौट जाने की प्रेरणा ही पाई। इन असंख्य ऊँची सीढ़ियों पर आने जाने वाले पुजारियों ने निरन्तर देखते देखते ही मेरे विषय में अनेक प्रश्नों का समाधान कर लिया होगा; उनका कुतूहल अति परिचय-जनित उपेक्षा में परिवर्तित हो चुका होगा। अब मैं अपने विषय में कौन सी नवीन बात कहूँ!

सान्ध्यगीत में नीरजा के समान ही कुछ स्फुट गीत संग्रहीत हैं। नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख दुख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देख कर मेरे रोम रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हृदय में खिला हो; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख दुख-मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर-भीतर में एक सामञ्जस्य सा ढूँढ लिया है जिसने सुख-दुख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।

मनुष्य के सुख-दुख जिस प्रकार चिरन्तन हैं उनकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही चिरन्तन रही है, परन्तु यह कहना कठिन है कि उन्हें व्यक्त करने के साधनों में प्रथम कौन था।

सम्भव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहली रश्मि छूकर चिड़िया आनन्द में चहचहा उठती है और मेघ को घुमड़ता घिरता देख कर मयूर नाच उठता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले पहले अपने भावों का प्रकाशन ध्वनि और गति द्वारा ही

किया हो। विशेष कर स्वर सामञ्जस्य में बँधा हुआ गेय काव्य मानव-हृदय के कितना निकट है यह उदात्त अनुदात्त स्वरों में बँधे वेदगीत तथा अपनी मधुरता के कारण प्राणों में समा जाने वाले प्राकृत पदों के अधिकारी हम भली भाँति समझ सके हैं।

प्राचीन हिन्दी साहित्य का भी अधिकांश गेय है। तुलसी का इष्ट के प्रति विनीत आत्म-निवेदन गेय है, कबीर का बुद्धिगम्य तत्वनिदर्शन सगीत की मधुरता से बसा हुआ है, सूर के कृष्ण-जीवन का विस्तृत इतिहास भी गीतिमय है और मीरा की व्यथामिश्रित पदावली तो सारे गीति-जगत् की सम्राज्ञी ही कही जाने योग्य है।

सुख-दुःख के भावावेशमयी अवस्थाविशेष का गिने चुने शब्दों में स्वरसाधना से उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को सयम की परिधि में बँधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्रायः भाव की अतिशयता में कला की सीमा लाँघ जाते हैं और उसके उपरान्त भाव के संस्कारमात्र से मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ—दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्त क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें सयम का नितान्त अभाव है। उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है जिसमें सयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत सयत हो जाने की सम्भावना रहती है। उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है जिसमें सयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्त क्रन्दन के पीछे छिपे दुःखातिरेक को दीर्घ निश्वास में छिपे हुए सयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं। मीरा के हृदय में बैठी हुई नारी और विरहिणी के लिये भावातिरेक सहज प्राप्य था, उसके बाह्य राजरानीपन और आन्तरिक साधना में सयम के लिये पर्याप्त अवकाश था। इसके अतिरिक्त वेदना भी आत्मानुभूत थी अतः उसका 'हेली मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दर्द न जाने कोय' सुन कर यदि हमारे हृदय का तार तार उसी ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम रोम उनकी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। सूर का सयम भावों की कोमलता और भाषा की मधुरता के उपयुक्त ही है, परन्तु कथा इतनी परार्थी है कि हम बहुत की इच्छा मात्र लेकर उसे सुन सकते हैं बहते नहीं और प्रातःस्मरणीय गोस्वामी जी के विनय के पद तो आकाश की मन्दाकिनी कहे जा सकते हैं, हमारी कभी गन्दली कभी स्वच्छ वेगवती सरिता नहीं। मनुष्य की चिरन्तन अपूर्णता का ध्यान कर उनके पूर्ण इष्ट के सम्मुख हमारा मस्तक श्रद्धा से, नम्रता से नत हो जाता है, परन्तु हृदय कातर क्रन्दन नहीं कर उठता। इसके विपरीत कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर हममें उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं, भाव नहीं जो गीत का लक्ष्य है।

हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत-प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और व्यक्तिप्रधान जीवन हमें काव्य के किसी अग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही देना नहीं चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिये ससार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कम्पन को अकित कर लेने के लिये उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिये विकल हैं। सम्भव है यह उस युग की प्रतिक्रिया हो जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कह कर ससार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।

इस युग के गीतों की एकरूपता में भी ऐसी विविधता है जो उन्हें बहुत काल तक गुरबिन रख सकेगी। इनमें कुछ गीत मलयसमीर के झोंके के समान हमें बाहर से स्पर्श कर अन्तस्तल तक सिहरा देते हैं, कुछ अपने दर्शन से बोझिल पखों द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं, कुछ किसी अलक्ष्य डाली पर छिप कर बैठी हुई कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले स्वप्न की कथा कहते रहते हैं और कुछ मन्दिर के पूत धूप-धूम के समान हमारी दृष्टि को धुधला परन्तु मन को सुरभित किये बिना नहीं रहते।

प्रकाश-रेखाओं के मार्ग में बिखरी हुई बदलियों के कारण जैसे एक ही विस्तृत आकाश के नीचे हिलोरें लेने

वाली जलराशि में कहीं छाया और कहीं आलोक का आभास मिलने लगता है उसी प्रकार हमारी एक ही काव्यधारा अभिव्यक्ति की भिन्न शैलियो के अनुसार भिन्नवर्णी हो उठी है।

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध मे प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल मे बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप मे चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख मे उदास और सुख मे पुलकित जान पडती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि मे भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपो मे प्रकट एक महा-प्राण बन गई, अत अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओ का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाये अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड अन्धकार और उज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चञ्चलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेकरूपता मे, परिवर्तनशील विभिन्नता मे, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय मे समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।

परन्तु इस सम्बन्ध मे मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योकि मानवीय सम्बन्धों मे जब तक अनुराग-जनित आत्म-विसर्जन का भाव नही घुल जाता तब तक वे सरस नही हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नही हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नही होता। इसीसे इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया। रहस्यवाद, नाम के अर्थ मे छायावाद के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ मे विशेष प्राचीन नही। प्राचीन काल के दर्शन मे इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिये उसमे स्थान कहाँ ! वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि या आत्मा की लौकिकी तथा पारलौकिकी सत्ता विषयक मत मतान्तर मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखते है, हृदय से नही, क्योकि वही तो शुद्ध बुद्ध चेतन को विकारों मे लपेट रखने का एकमात्र साधन है। योग का रहस्यवाद इन्द्रियो को पूर्णत वश मे करके आत्मा का कुछ विशेष साधनाओ और अभ्यासो के द्वारा इतना ऊपर उठ जाना है जहाँ वह शुद्ध चेतन मे एकाकार हो जाता है। सूफीमत के रहस्यवाद मे अवश्य ही प्रेमजनित आत्मानुभूति और चिरन्तन प्रियतम का विरह समाविष्ट है, परन्तु साधनाओ और अभ्यासो मे वह भी योग के समकक्ष रखा जा सकता है और हमारे यहाँ कबीर का रहस्यवाद योगिक क्रियाओ से युक्त होने के कारण योग, परन्तु आत्मा और परमात्मा के मानवीय प्रेम-सम्बन्ध के कारण वैष्णव युग के उच्चतम कोटि तक पहुंचे हुए प्रणयनिवेदन से भिन्न नही।

आज गीत मे हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप मे ग्रहण कर रहे है वह इन सबकी विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के साकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँध कर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका। इसमें सन्देह नही कि इस वाद ने रूढ़ि बन बहुतों को भ्रम मे डाल दिया है, परन्तु जिन इने-गिने व्यक्तियो ने इसे वास्तव मे समझा, उन्हे इस नीहारलोक में भी गन्तव्य मार्ग स्पष्ट दिखाई दे सका। इस काव्यधारा की अपार्थिव पार्थिवता और साधना की न्यूनता ने सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, अत यदि इसका रूप कुछ विकृत होता जा रहा हो तो आश्चर्य की बात नही। हम यह समझ नही सके है कि रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नही। काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नही; उसके लिये हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिये जो सबको अपने स्पर्श मात्र से सोना कर दे। एक पागल से चित्रकार को जब फटा कागज, टूटी तूलिका और धब्बे डाल देने वाला रग मिल जाता है तब क्षण भर में वह निर्जीव कागज जीवित हो उठता है, रगो मे कल्पना साकार हो उठती है, रेखाओ में जीवन प्रतिबिम्बित हो उठता है तथा उस पार्थिव वस्तु के अपार्थिव रूप के साथ हम हँसते हैं, रोते है और उसे मानवीय सम्बन्धों

में बाध रखना चाहते हैं। एक निरर्थक झनझन से पूर्ण टूटे एकतार के जजर तारों में गायक की कुशल उंगलिया उलझ जाने पर उन्ही तारो में हमारे सुख-दुख, रो-हँस उठते हैं, सीमा के सारे सकीर्ण बन्धन छिन्न-भिन्न होकर बह जाते हैं और हम किसी अज्ञात सौन्दर्य-लोक में पहुँच कर चकित-से मुग्ध-से उसे सदा सुनते रहने की इच्छा करने लगते हैं। निरतर पैरों से ठुकराये जाने वाले कुरूप पाषाण से शिल्पी के कुशल हाथ का स्पर्श होते ही वही पाषाण मोम के समान अपना आकार बदल डालता है, उसमे हमारे सौन्दर्य के, शक्ति के आदर्श जाग उठते हैं और तब उसी को हम देवता के समान प्रतिष्ठित कर चन्दन फूल से पूज कर अपने को धन्य मानते हैं। जल का एक रग भिन्न भिन्न रगवाले पात्रों मे जैसे अपना रग बदल लेता है उसी प्रकार चिरन्तन सुख-दुख हमारे हृदयो की सीमा और रग के अनुसार बन कर प्रकट होते हैं। हमे अपने हृदयो की सारी अभिव्यक्तियो को एक ही रूप देने को आकुल न होना चाहिये, क्योकि यह प्रयत्न हमे किसी भी दिशा मे सफल न होने देगा।

मेरे गीत मेरा आत्मनिवेदन मात्र हैं—उनके विषय में कुछ कह सकना मेरे लिये सम्भव नही। इन्हे मैं अपनी अकिंचन भेट के अतिरिक्त कुछ नही मानती।

अपने चित्रो के विषय में कहते हुए मुझे जिस सकोच का अनुभव हो रहा है वह भी केवल शिष्टाचार-जनित न होकर अपनी अपात्रता के यथार्थ ज्ञान-जनित है। मैं सत्य अर्थ में कोई चित्रकार नहीं हूँ, हो सकने की सम्भावना भी कम है; परन्तु शैशव मे ही रग और रेखाओं के प्रति मेरा बहुत कुछ वैसा ही आकर्षण रहा है जैसा कविता के प्रति। मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाध कर चलता रहा है, इसीसे जब रातदिन होने का प्राकृतिक कारण मुझे ज्ञान न था तभी सन्ध्या से रात तक बदलने वाले आकाश के रगो में मुझे परियो का दर्शन होने लगा था, जब मेघों के बनने का क्रम मेरे लिये अज्ञेय था तभी उनके वातायन में दिखाई देनेवाली आकृतियो का मैं नामकरण कर चुकी थी और जब मुझे तारो का हमारी पृथ्वी से बड़ा या उसके समान होना बता दिया गया था तब भी मैं रात को अपने आगन में 'आओ, प्यारे तारे आओ, मेरे आगन मे बिछ जाओ' गा गाकर उन महान् लोकों को नीचे बुलाने मे नही हिचकिचाती थी। रात को स्लेट पर गणित के स्थान में तुक मिला कर और दिन मे मा या चाची की सिन्दूर की डिबिया चुरा कर कोने में फर्श पर रग भरना और दण्ड पाना मुझे अब तक स्मरण है। कह नहीं सकती अब वे वयोवृद्ध चित्रकार जिनके निकट मैंने रेखाओं का अभ्यास किया था होंगे या नही। यदि होंगे तो सम्भव है उन्हे वह विद्यार्थिनी न भूली हो जो एक रेखा खीच कर तुरन्त ही उसमे भरने के लिए रग माँगती थी और जब वे रग भरना सिखाने लगे तब जो नियम से उनके सामने भरे हुए रगो पर रात को दूसरा रग फेर कर चित्र ही नष्ट कर देती थी।

इसके उपरान्त का इतिहास तो पाठ्य-पुस्तको, परीक्षाओं और प्रमाणपत्रों का इतिहास है जिसे कविता ही सरस बनाती रही। मेरी रगीन कल्पना के जो रग शब्दो में न समाकर छलक पडे या जिनकी शब्दो मे अभिव्यक्ति मुझे पूर्ण रूप से सन्तोष न दे सकी वे ही तूलिका के आश्रित हो सके हैं, इसीसे इन रगो के सघात का स्वत: पूर्ण होना सभव नही। यह तो मेरे भावातिरेक में उत्पन्न कविता-प्रवाह से निकल कर एक भिन्न दिशा मे जाने वाली शाखामात्र है, अत दोनो गण दोष मे समान ही रहेंगे—यदि एक का उद्गम और वातावरण धुधला है तो दूसरे का भी वैसा ही होना अनिवार्य-सा है, यदि एक वस्तुजगत् को विशेष दृष्टिकोण से देखना और विशेष रूप में ग्रहण करता है तो दूसरे का दृष्टिकोण भी कुछ भिन्न और ग्रहण करने की शक्ति कुछ विपरीत न हो सकेगी।

मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि चित्रकार के लिये कवि होना जितना सहज हो सकता है उतना कवि के लिये चित्रकार हो सकना नही। कला जीवन में जो कुछ सत्य शिव सुन्दरम् है सबका उत्कृष्टतम विकास है, परन्तु इस उत्कृष्टतम विकास मे भी श्रेणियाँ हैं। जो कला भौतिक उपकरणो से जितनी अधिक स्वतत्र हो कर भावों की अधिकाधिक अभिव्यजना में समर्थ हो सकेगी वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जायगी। इस दृष्टि से भौतिक आधार की अधिकता और भावव्यञ्जना की अपेक्षाकृत न्यूनता से युक्त वास्तुकला हमारी कला का प्रथम सोपान और भौतिक

सामग्री के अभाव और भावव्यञ्जना की अधिकता से पूर्ण काव्यकला उसका सबसे ऊँचा अन्तिम सोपान मानी जायगी। चित्रकला वास्तुकला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतन्त्र होने पर भी काव्यकला की अपेक्षा अधिक परतन्त्र है, कारण वह देश के ऐसे कठिनतम बन्धन में बधी है जिसमें उसे चित्रकला बने रहने के लिये सदा ही बधा रहना होगा। स्वतन्त्र वातावरण का विहारी विहग अपने स्वभाव को बन्धनो के उपयुक्त उतनी सरलता से नही बना पाता जितनी सुगमता तथा सहज भाव से बन्धनो का पक्षी उन्मुक्त वातावरण की पात्रता प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक कवि चित्र के, लम्बाई चौडाई से युक्त देश के बन्धनो और भावो की अपेक्षाकृत सीमित व्यञ्जना से क्षुब्ध-सा हो उठता है। न वह इन बन्धनो को तोड देने में समर्थ है और न काव्य के स्वतन्त्र वातावरण को भूल सकता है।

इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है जो चित्रकार को कवि से एकाकार न होने देगा। चित्रकला निरीक्षण और कल्पना तथा कविता भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर है। चित्रकार प्रत्यक्ष और कल्पना की सहायता से जो मानसिक चित्र बना लेता है उसे बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी रेखाओ मे बाँध कर रग से जीवित कर देने की वैसी ही क्षमता रखता है, परन्तु कवि के लिये भावातिरेक और कल्पना की सहायता से किसी लोक की सृष्टि कर उसे बहुत काल के उपरात उसी तन्मयता से, उसी तीव्रता से व्यक्त करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य होगा। अवश्य ही यह पद्यबद्ध इतिहास के समान वर्णनात्मक रचनाओ के विषय मे सत्य नही, परन्तु व्यक्तिप्रधान भावात्मक काव्य का वही अश अधिक से अधिक अन्तस्तल मे समा जाने वाला, अनेक भूले सुखदुखो की स्मृतियो मे प्रतिध्वनित हो उठने के उपयुक्त और जीवन के लिये कोमलतम स्पर्श के समान होगा, जिसमे कवि ने गतिमय आत्मानुभूत भावातिरेक को सयत रूप में व्यक्त कर उसे अमर कर दिया हो या जिसे व्यक्त करते समय वह अपनी साधना द्वारा किसी बीते क्षण की अनुभूति की पुनरावृत्ति करने में सफल हो सका हो। केवल सस्कारमात्र भावात्मक कविता के लिये सफल साधन नही है और न किसी बीती अनुभूति की उतनी ही तीव्र मानसिक पुनरावृत्ति ही सबके लिये सब अवस्थाओ में सुलभ मानी जा सकती है।

बालक अपना सक्रिय जीवन जिस प्रत्यक्ष और उसके अनुकरण से आरम्भ करता है वही निरीक्षण और अनुकरण पर्याप्त मात्रा मे चित्रकार के अश मे समाहित है। परन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो कवि इन सीढियो से ऊपर पहुचा हुआ जान पडेगा, क्योकि इन व्यापारों से उत्पन्न सुख-दुखमयी अनुभूति को यथार्थ व्यक्त करने की उत्कठा उसका प्रथम पाठ है। इसमे सन्देह नही कि चित्रमय काव्य हो सकता है और काव्यमय चित्र, परन्तु प्राय सफल चित्रकार असफल कवि का और सफल कवि असफल चित्रकार का शाप साथ लाता रहा है।

मैं तो किसी भी दिशा मे सफल नही हूँ, अत मेरे शाप को भी दुगुना होना चाहिये। अपने व्यस्त जीवन से कुछ क्षणो को छीन कर जैसे-तैसे कुछ लिखते-लिखते मेरे स्वभाव ने मुझे चित्रकला के लिये नितान्त अनुपयुक्त बना दिया है, कारण जितने समय मे मै तुक मिला लेती हूँ उतने ही समय में चित्र समाप्त कर देने के लिये आकुल हो उठती हूँ। ऐसी दशा मे अपनी इन विचित्र कृतियो को हिन्दी ससार के सन्मुख रखते हुए मुझे केवल सकोच है और क्या कहू! सन्तोष इतना ही है कि यह मेरी है और मै हिन्दी ससार से अविच्छिन्न सम्बन्ध मे बधी हूँ।

१०-८-३६

अपने विषय में कुछ कहना प्रायः बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि अपने दोष देखना अपने आपको अप्रिय लगता है और उनको अनदेखा कर जाना औरों को—

'रश्मि' में मेरी कुछ नई और कुछ पुरानी रचनाएँ संगृहीत हैं। इनके विषय में मैं क्या कहूँ। यह मेरे इतने निकट हैं कि उसका वास्तविक मूल्य आँकना मेरे लिये सम्भव नहीं, आँखों में देखने की शक्ति होने पर भी उनसे मिला कर रखी हुई वस्तु कहीं स्पष्ट दिखाई देती है!

हाँ इतना कहने में मुझे सकोच न होगा कि मैं स्वयं अनित्य होकर भी जिन प्रिय वस्तुओं की नित्यता की कामना करने से नहीं हिचकती यह उन्हीं में से एक है।

जैसे मेरे बिना जाने हुए ही मेरे स्वभाव में अनेक गुण-दोष आ गये हैं उसी प्रकार कुछ लिखते रहने की दुर्बलता भी उत्पन्न हो गई है। कब और कैसे—यह तो मैं स्वयं ही नहीं जानती, केवल इतना कह सकती हूँ लिखने में सुख मिलता है, न लिखने से जीवन में एक अभाव-सा प्रतीत होता है। समय के अनुसार विचारों में, विचारों के अनुसार रचनाओं में जो परिवर्तन आते गये हैं उनके लिये भी मुझे कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ा। याद नहीं आता जब मैंने किसी विषय विशेष या 'वाद' विशेष पर सोच कर कुछ लिखा हो।

मेरे लिये तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्दचित्र मात्र है जिससे उसका व्यक्तित्व और ससार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक ससार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस ससार से अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार ससार बसा रखा है। मनुष्य में जड और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित ससार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का—एक उसको विश्व से बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।

जड़ चेतन के बिना विकासशून्य है और चेतन जड़ के बिना आकारशून्य। इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो चाहे किसी वाद के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है। कितनी ही भिन्न परिस्थितियों में होने पर भी हम हृदय से एक ही हैं, यही कारण है कि दो मनुष्यों के देश, काल, समाज में समुद्र के तटों जैसा अन्तर होने पर भी वे एक दूसरे के हृदयगत भावों को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जीवन की एकता का यह छिपा हुआ सूत्र ही कविता का प्राण है। जिस प्रकार वीणा के तारों के भिन्न-भिन्न स्वरों में एक प्रकार की एकता होती है जो उन्हें एक साथ मिल कर चलने की और अपने साम्य से सगीत की सृष्टि करने की क्षमता देती है उसी प्रकार मनुष्य के हृदयों में एकता छिपी हुई है। यदि ऐसा न होता तो विश्व का सगीत ही बेसुरा हो जाता।

फिर भी न जाने क्यों हम लोग अलग अलग छोटे छोटे दायरे बना कर उन्हीं में बैठे बैठे सोचा करते हैं कि दूसरा हमारी पहुँच से बाहर है। एक कवि विश्व का या मानव का बाह्य सौन्दर्य देख कर सब कुछ भूल जाता है, सोचता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर अलग एक सगीत की सृष्टि करेगा; दूसरा विश्व की आन्तरिक वेदना-बहुल सुषमा पर मतवाला हो उठता है, समझता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर सबसे अलग एक निराले सगीत की सृष्टि कर लेगा; परन्तु वे नहीं सोचते कि उन दोनों के स्वर मिल कर ही विश्व-सगीत की सृष्टि कर रहे हैं।

वर्तमान, आकाश से गिरी हुई सम्बन्धरहित वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है जिसके जन्म का रहस्य भूत-काल में ही ढूँढा जा सकता है। हमारे 'छायावाद' के जन्म का रहस्य भी ऐसा ही है। मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थक कर वह अपने लिये सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊब कर उनको तोड़ने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है।

छायावाद के जन्म का मूलकारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय

अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।

इन छायाचित्रों को बनाने के लिये और भी कुशल चितेरों की आवश्यकता होती है, कारण उन चित्रों का आधार छूने या चर्मचक्षु से देखने की वस्तु नहीं। यदि वे मानव हृदय में छिपी हुई एकता के आधार पर उनकी संवेदना का रंग चढ़ा कर न बनाये जायँ तो वे प्रेत-छाया के समान लगने लगें या नहीं इसमें मुझे कुछ ही सन्देह है।

जो कुछ हो मेरा विश्वास है कि यदि हृदयवाद में हम बाह्य विश्व का अस्तित्व एकदम भूल जायँ तो सम्भव है कि कुछ दिनों बाद हम अपने बाह्य रूप की अभिव्यक्ति के लिये उतने ही आकुल हो उठें जितने पहले हृदय के लिये थे।

छायावाद के भाग्य में क्या है इसका निर्णय समय करेगा जिसकी गति में कोई भी हल्की, तुच्छ वस्तु नहीं ठहर पाती।

छायावाद के अन्तर्गत न जाने कितने वाद हैं। मेरी रचना का कहाँ स्थान है यह मैं नहीं जानती—जहाँ जिसका जी चाहे रखे। कविता लिखने का ध्येय उसे किसी वाद के अन्तर्गत रखना ही तो नहीं है जो मैं चिन्ता करूँ!

अपने दुःखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख के धूपछाहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिये किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

अवश्य ही इस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती—

दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सबको बाँट कर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि की मोक्ष है।

मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।

अपने भावों का सच्चा शब्दचित्र अंकित करने में मुझे प्रायः असफलता ही मिली है, परन्तु मेरा विश्वास है कि असफलता और सफलता की सीढ़ियों द्वारा ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा।

परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के उषःकाल में मेरे सुखों का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण कण में एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार सन्ध्या काल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दब कर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा! ऐसा ही मेरा स्वप्न है।

व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुल कर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुल कर जीवन को अमरत्व—

जब उस पूर्ण की सृष्टि होने पर भी मेरा जीवन इतनी त्रुटियों से भरा हुआ और इतना अपूर्ण है तब इस अपूर्ण जीवन की कृति में तो असंख्य त्रुटियाँ होंगी यह जान कर भी रश्मि को आप सब को समर्पित करने की धृष्टता के लिये क्षमा चाहती हूँ।

१५-९-३२

म०

प्रथम याम

नीहार

रचना काल
१९२४–१९२८

निशा की, धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधुमदिरा का मोल,

झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार!

बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर

भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश!
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार!

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।

नहीं अब गाया जाता देव!
थकी अंगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार!
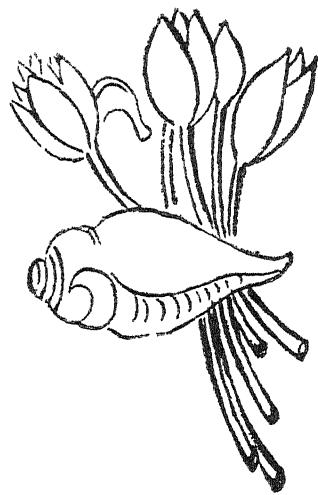
रजतकरों की मृदुल तूलिका,
से ले तुहिन-बिन्दु सुकुमार,
कलियों पर जब आंक रहा था
करुण कथा अपनी संसार;

तरल हृदय की उच्छ्वासें
जब भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटों पर
अञ्जन बरसाने आते!

मधु की बूँदों में छलके जब
तारक-लोकों के शुचि फूल,
विधुर हृदय की मृदु कम्पन सा
सिहर उठा वह नीरव कूल

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान!

चल चितवन के दूत सुना
उनके, पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात !

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना—
के मन प्याले पर प्याले !

पीडा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !

कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अबतक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास ?

वनबाला के गीतों सा
निर्जन में बिखरा है मधुमास,
इन कुंजों में खोज रहा है
सूना कोना मन्द बतास ।

नीरव नभ के नयनों पर
हिलतीं हैं रजनी की अलकें,
जाने किसका पथ देखतीं
बिछकर फूलों की पलकें !

मधुर चाँदनी धो जाती है
खाली कलियों के प्याले,
बिखरे से हैं तार आज
मेरी वीणा के मतवाले,

पहली सी झंकार नहीं है ।
और नहीं वह मादक राग,
अतिथि ! किन्तु सुनते जाओ
टूटे तारों का करुण विहाग !

मैं अनन्त पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें,
उनको कभी न धो पायेंगी
अपने आँसू से रातें!

तारों में प्रतिबिम्बित हो
मुस्कायेंगी अनन्त आँखें,
होकर सीमाहीन, शून्य में
मँडरायेंगी अभिलाषें!

उड़ उड़ कर जो धूल करेगी
मेघों का नभ में अभिषेक,
अमिट रहेगी उसके अंचल—
में मेरी पीड़ा की रेख?

वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आकर
लौटेंगे सौ सौ निर्वाण!

जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल!

निश्वासों का नीड़, निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार,

तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार!'

देकर सौरभ-दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल?

'अब इनमे क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार!'

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अञ्चल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचलीं पड़ती किरणे भोली,

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार;
छलकी पलकों से कहती है 'कितना मादक है संसार!'

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली, नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,

हँस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ पारावार,
'बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार!'

स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
है जब मेरे पागल प्राण,

आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झकार,
गा जाती है करुण स्वरो मे 'कितना पागल है ससार!'

वे मुस्काते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं
जिनको भाता है बुझ जाना,

वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह,

वे सूने से नयन, नहीं—
जिनमें बनते आँसू मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं—
जिसमें बेसुध पीड़ा सोती;

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद!

× × ×

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार!

ढ॒कत आँम् सा मकमार
बिखरत सपनो सा अनात
चरा कर अरुणा का सि दूर
मस्कराया जब मरा प्रात

छिपाकर लाली म चुपचाप
सनहला प्याला लाया कौन ?

× × ×

हस उठ छकर ट तार
प्राण म मडराया उ माद
यथा मीठी ल यारी यास
सो गया बसुध अन्तर्नाद

घ म यी साकी की साध
सुना फिर फिर गाता ह कौन ?

रजनी ओढ़ जाती थी
झिलमिल तारो की जाली
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली

शशि को छूने मचली सी
लहरो का कर कर चुम्बन
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिङ्गन

अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल
आँसू से भर जाता तब—
सूखा अवनी का अञ्चल !

पल्लव के डाल हिंडोले
सौरभ सोता कलियो मे
छिप छिप किरण आती तब
मधु से सींची गलियो मे

आँखो मे रात बिता जब
विधु ने पीला मुख फेरा
आया फिर चित्र बनाने
प्राची मे प्रात चितेरा

कन कन मे जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली
मै निर्धन तब आई ले
सपनो से भर कर डाली।

नी
हा
र

मिट जाता काल अनन म
सन्ध्या की आँखो का राग
जब तार फला फला पर
सून म गिनता आकाश

उसकी खोइ सी चाहो म
घटकर म ी हुइ आहो म।

झूम झूम कर मतवाली सी
पिय वदनाओ का प्याला
प्राणो म रूधी निश्वास
आती ज मघो की माला

उसक रह रह कर रोन म
मि तर विद्युत् क रोन म।

धीर स सून आगन म
फला जब जाती ह रात
भर भर क ठढी सांसो में
मोती स आँसू की पांत

उनकी सिहराइ कम्पन म
किरणो क यास चम्बन म।

जान किस बीत जीवन का
स शा द मद समीरण
छ दता पन पखो स
मुझाय फलो व लोचन

उनक फीक मुस्कान म
फिर उसा तर ीर जान म।

आँखो की नीरव भिक्षा म
आम क मिटत दागो म
ओठो की हसती पीडा म
आहो क बिखर त्यागो म

कन कन म बिखरा ह निमम।
मर मानस का सूनापन।

या
मा

बहती जिस नक्षत्र लोक म
निद्रा क ‍ ासो स वात
रजत रश्मियो क तारो पर
विमुग्ध सी गाती थी रात !

अलसाती थी ‍ हर पी कर
मधुमिश्रित तारो की ओस
भरती थी सपन गिन गिन कर
मक व्यथाय अपन कोष !

दर उन्ही नीलम कलो पर
पीडा का ल झीना तार
उच्छवासो की गथी माला
मन पा‍ थी उपहार ।

यह विस्मति ह या सपना वह
या जीवन विनिमय की भल !
काल क्यो पडत जात ह
माला क सोन स फल ?
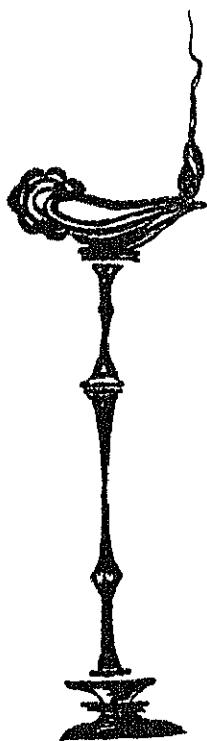
घायर मन न्कर सी आती
मवो म तारो का त्याम
यह जाजन का ार न्य का
नरना ज क ग ाग!

जब नगा नीप जगातर
फिर रहता जवा ?
आन आस आग पिजा नो
कता किन ा पागातार?

झुक जुक झूम भम कर लर
भरती बँगा क मोती
यह मर सपनो की छाया
झोको म फिरती रोती!

आज किसी क मसज तारो--
की वह दूरागत भकार
मझ बुलाती ह सहमी सी
झझा क परदा क ार!

इस असीम म म मिल्कर
मझको पल भर सो जान दो
बझ जान दा दव! आज
मरा दीपक बुझ जान दो!

छाया की आँखमिचौनी
मघो का मतवालापन
रजनी क श्याम कपोलो
पर ढरकील श्रम क कन

फलो की मीठी चितवन
नभ की य दीपावलियाँ
पील मुख पर सध्या क
व किरणो की फुलझडिया

विधु की चादी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी
जिसम उजियारी रात
लुटती घुलती मिसरी सी !

भिक्षुक स फिर जाओग
जब लकर यह अपना धन
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणो का महगापन !

क्यो आज दिय दत हो
अपना मरकत सिंहासन ?
यह ह मर मरु मानस
का चमकीला सिकता कन !

आलोक यहा लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन !

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बन कर खोता है !

जग हँसकर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन
इनके बरसाये मोती
क्या वह अबतक पाया गिन ?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीडा
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन !

घोर तम छाया चारो ओर
घटाय घिर आ घन घोर
वेग मारुत का ह प्रतिकूल
हिल जात ह पवनमल
गरजता सागर बारम्बार
कौन पहुचा दगा उस पार?

तरङ्ग उठा पवताकार
भयकर करती हाहाकार
अर उनक फनिल उच्छवास
तरी का करत उपहास
हाथ म गइ छूट पतवार
कौन पहुँचा दगा उस पार?

ग्रास करन तरणी स्वच्छन्द
घूमत फिरत जलचर-वृन्द
दख कर काला सिधु अनन्त
हो गया हा साहस का अन्त!
तरङ्ग ह उत्ताल अपार
कौन पहुचा दगा उस पार?

बुझ गया वह नक्षत्र प्रकाश
चमकती जिसम मरी आशा
रन बोली सज कृष्ण दुकूल
विसजन करो मनोरथ फूल
न जाय कोइ कर्णधार
कौन पहुचा दगा उस पार?

सुना था म न इम क पार
बसा ह मौन का ससार
जहाँ क हँसत विहग ललाम
मृत्यु छाया का मनहर नाम!
वरा वा ? अनन्त शृंगार
कौन पहुचा दगा उस पार?

जहाँ क निर्झर नीरव गान
मना करते अमरत्व प्रदान
सुनाता नभ अनन्त झंकार
बजा दता ह सारे तार
भरा जिसमे असीम सा प्यार
कौन पहुँचा दगा उस पार?

पुष्प मे ह अनन्त मुस्कान
त्याग का ह मारुत मे गान
सभी म ह स्वर्गीय विकास
जहाँ कोमल कमनीय प्रकाश
दूर कितना ह वह ससार!
कौन पहुचा दगा उस पार?

सुनाइ किसने पल भर आन
कान म मधुमय मोहक तान?
तरी को ल जाओ मझधार
डूब कर हो जाओगे पार
विसर्जन ही ह कर्णधार
वही पहुचा दगा उस पार!

थकी पलक सपनो पर डाल
व्यथा म सोता हो आकाश
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलो क उर स अवसाद
वदना की वीणा पर दव
शून्य गाता हो नीरव राग
मिलाकर निश्वासो क तार
गूँथती हो जब तार रात
उन्ही तारक फलो म दव !
गूँथना मर पागल प्राण—
हठील मर छोट प्राण !

किसी जीवन की मीठी याद
लटाता हो मतवाला प्रात
कली अलसाइ आँख खोल
सुनाती हो सपन की बात
खोजत हो खोया उन्माद
मन्द मलयानिल क उच्छ्वास
माँगती हो आँसू क बिन्दु
मूक फलो की सोती प्यास
पिला दना धीर स दव
उस मर आँसू सुकुमार—
सजील य आँसू क हार !

इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला
पीड़ा का सार मिला कर
प्राणों का आसव ढाला।

मलयानिल के झोंकों में
अपना उपहार लपेटे
मैं सूने तट पर आई
बिखरे उद्गार समेटे!

काले रजनी अंचल में
लिपटी लहरें सोती थीं
मधु मानस का बरसाती
वारिदमाला रोती थी,

नीरव तम की छाया में
छिप सौरभ की अलकों में,
गायक वह गान तुम्हारा
आ मँडराया पलकों में!

हाला सी हालाहल सी
बह गई अचानक लहरी
डूबा जग भरा तन मन
आँख शिथिला सिहरी !

बसंत में प्राण हए जब
झुककर उन झंकारों को
उडा ा कुंतल से
चुम्बन करा तारों का !

इस मतवाली वीणा से
सब मानस था मतवाला
व मन्द हुई झंकार
यह चूर हो गया प्याला !

हो ग कहाँ अन्तर्हित
सपने ले कर वे रात !
जिनका पथ आलोकित कर
बुझने जाती ये आँखें !

जो मुखरित कर जाती थीं
मेरा नीरव आवाहन
मैं ने दुर्बल प्राणों की
वह आज सुला दी कंपन !

थिरकन अपनी पुतली की
भारी पलकों में बाँधी
निस्पंद पड़ी हैं आँखें
बरसाने वाली आँधी !

जिसके निष्फल जीवन ने
जल जल कर देखी राहें
निर्वाण हुआ है देखो
वह दीप लुटा कर चाहें !

निर्घोष घटाओं में छिप
तड़पन चपला की सोती
झंझा के उन्मादों में
घुलती जाती बेहोशी !

करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना
हे नभ की दीपावलियो !
तुम पल भर को बुझ जाना !

किरनों रानी की मन
नल्लाड ह ाजियारी
धो डाली ह स‍ ्या क
पील सदुर स ाली

न ा क ववल र र ाल
जपल्न चमकील तार
इन आ ा पर रा कर
रजनीक पार उतार !

वह गइ ि तित की रखा
मिलती ह कहीं न हर
भूग सा मत्त समीरण
पागल सा ता फर !

जपन उर र सानि स
ि ववर कुछ प्रम कहानी
सन्त रोत बा ल
तूफाना की मनमानी !

न ्रदो क दपण म
करुणा क्या भाक रही ह ?
क्या सागर की धडकन म
लहर ढ आक रही ह ?

श य स टकरा कर सुकुमार
करगी पीडा हाहाकार
बिखर कर कन कन में हो याप्त
मघ ना छा जगी ससार !

विधऊत होग यह नक्ष ा
अनिल की जब छूकर निश्वास
निशा क आँसू म प्रतिबिम्ब
दख निज कापगा आकाश !

विश्व होगा पीडा का राग
निराशा जब होगी वरदा ा
साथ जकर मुरझाइ साथ
बिखर जायग यास प्राण !

उदधि नभ को कर लगा यार
मिलग सीमा और अनन्त
उपासक ही होगा आराध्य
एक होग पतझार वसन्त !

बुझगा ज्कर आशा दीप
सु ला दगा आकर उ माद
कहा कब दखा था वह द ा ?
अतल म डागी यह याद !

प्रतीक्षा म मतवा नयन
उडग जब सौरभ क साथ
हृदय होगा नीरव आह्वा ा
मिलोग क्या तब ह ज्ञात ?
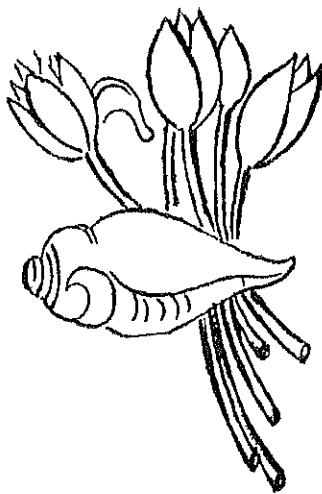
था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन
मुस्कराता था खिलाती
अंक में तुझको पवन!

खिल गया जब पूर्ण तू—
मञ्जुल सुकोमल पुष्पवर
लुब्ध मधु के हेतु मँडराते
लगे आने भ्रमर!

स्निग्ध किरणें चन्द्र की—
तुझको हँसाती थीं सदा
रात तुझ पर वारती थी
मोतियों की सम्पदा!

लोरियाँ गाकर मधुप
निद्रा विवश करते तुझे
यत्न माली का रहा—
आनन्द से भरता तुझे!

कर रहा अठखेलियाँ—
इतरा सदा उद्यान में
अन्त का यह दृश्य आया—
था कभी क्या ध्यान में!

सो रहा अब तू धरा पर—
शुष्क बिखराया हुआ
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाया हुआ!

आज तुझको [illegible]खकर
चाहक भ्रमर आता नहीं
[illegible]ाल अपना राग तुझ पर
प्रात ब साता नहीं

जिस पवन न अक म—
ल यार था तुझको किया
तीव्र झोंक स सुला—
उसन तुझ भू पर दिया।

कर दिया मधु और सौरभ
दान सा[illegible] [illegible]क दिन
किन्तु रोता कौन ह
तर लिए दानी सुमन ?

मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार न ?
स्वार्थमय सबको बनाया—
ह यहाँ करतार न !

विश्व मे ह फूल ! तू—
सब क हृदय भाता रहा
दान कर सर्वस्व फिर भी—
हाय हर्षाता रहा

जब न तेरी ही दशा पर
दुख हुआ संसार को
कौन रोयगा सुमन !
हमस मनुज नि सार को ?

या
मा

घो घा की अवगुंठन मा
कमण मा क्या गाती ह रा ?

दूर छूटा वह परिचित फ
कह रहा ह यह झंझावात
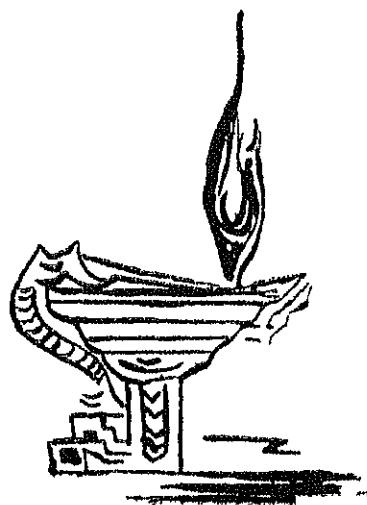
लिए जात तरणी किस ओर
अर मर नाविक नादान !

हो गया विस्मृत मानव लोक
हुए जात ह बसध प्राण

किंतु तरा नीरव संगीत
निरंतर करता ह आह्वान

यही क्या ह अनन्त की राह
अर मर नाविक नादान ?
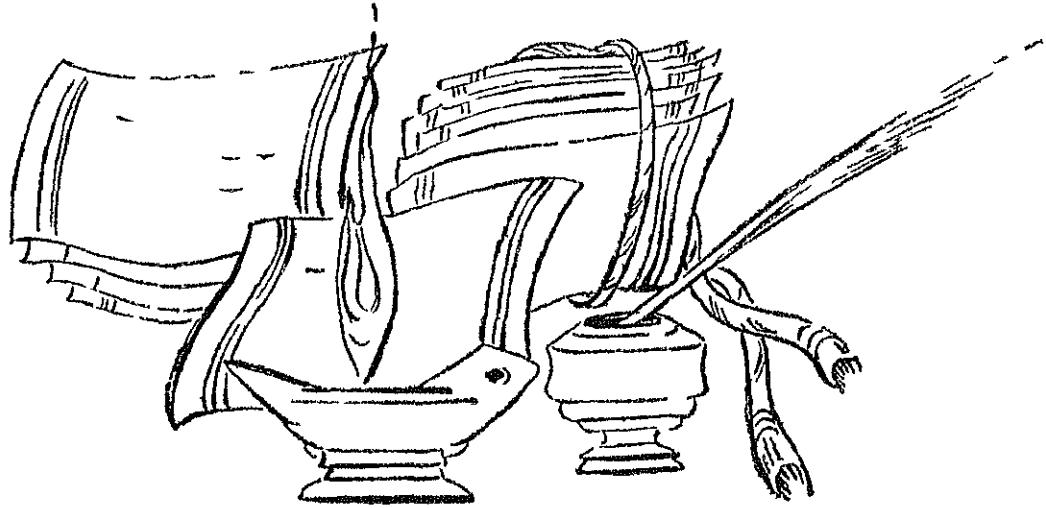
इस एक बद आस म
चाह साम्रा य रहा ो
वरदानो की वर्षा स
यह सनापन बिखरा दो

इ छाओ की कम्पन स
सोता एका त जगा दो
आशा की मस्काहट पर
मरा नराश्य लटा दो ।

चाह जजर तारो म
अपना मानस उलझा ा
इन पलको क प्याला म
सुख का आसव छलका दो

मर बिखर प्राणो म
सारी करुणा ढलवा दो
मरी छोटी सीमा म
अपना अस्तित्व मिटा दो ।

पर शष नही होगी यह
मर प्राणो की क्री ा ।
तुमको पी ा म ढढा
तुम म ढढगी पीडा ।

म कम्पन हू तू करुण राग
म आसू हू तू ~ विगा
म मदिरा तू उसका खमा
म छाया तू उसका अधार

मर भारत मर विशाल
मझको कह उन ना उ ार !
फिर एक बार बस एक बार !

ि ास कहती बीती ब ार
मतवाली जीवन ह असार
जिन भकारो क मधुर गा ा
ल गया छीन कोइ अजा ा

उन ारो पर ानकर विहाग
मन्गा जा दो ह उ ार !
फिर एक बार बस एक बार !!

मधर जीवन था मुग्ध वस त
विधुर बन कर आती क्यों याद ?
सुधा वसुधा म ाया क
प्राण म ाती क विष।

बुझाकर छोटा दीपा ोक
हु क्या हो असीम म ोप ?

हुई सोने की प्रतिमा क्षार
साधनाय बठी ह मौन
हमारा मानसकुञ्ज उजाड
द गया नीरव रो न कौन ?

नहीं क्या ाब होगा स्वीकार
पिघ ी ांखो का उपहार ?

बिखरते स्वप्नो की तस्वीर
अधूरा प्राणो का सन्देश
हृदय की ुकर यासी साध
बसाया ह जब कौन विदेश ?

रो रहा ह चरणो क पास
चाह जिनकी थी उनका प्यार !

यहो ह व विस्मृत सङ्गीत
खो गइ ह जिसकी झकार
यही सोत ह व उ छनाम
ज । रोता बीता ससार

यही ह प्राणो का इतिहास
यही बिखर वसन्त का शाप
नही जो अब आयगा लौट
यही उसका अक्षय सन्दश !

समाहित ह आत्म आह्वान
यही मर जीवन का सार
अतिथि ! क्या ल जाओग साथ
मु ध मर आँस दो चार ?

कामना की पलको म झूल
नवल फलो क ऊपर ...

लिए मतवाला सौरभ साथ
लजीली लतिकाय भर अक

यहा मत आओ मत्त समीर !
सो रहा ह मरा एकात !

लालसा की मदिरा म चूर
क्षणिक भगुर यौवन पर भूल

साथ लकर भौरो की भीर
विलासी ह उपवन क फूल !

बनाओ इस न लीलाभूमि
तपोवन ह मरा एकात !

नि ाली कलकल म अभिराम
मिलाकर मा॰क मा॰क गान

छलकता लहरो म उद्दाम
छिपा अपना अस्फट आह्वान

ाक निझर ! भङ्ग समाधि
साधना ह मरा एका त !

विजन वन म बिखरा कर राग
जगा सोत प्राणो की यास

ढालकर सौरभ म उ माद
नशीली फला कर निश्वास

लभाओ म ा मधवस त !
विरागी ह मरा एका त !

गलाबी चल चितवन म बोर
स ील सपना की म कान

झिलमिलाती अ ग ठन ाल
सनाक परिचित भली तान

जला मत अपना ीपक आश !
न खो ाय मरा एकात !

नी
हा
र

निराशा क झोको न दव ।
भरी मानस कुजो म धल
वन्नाओ क भञ्झावाा
गए निव । य० ीवन फल ।

बरमत य मोती अवदात
जहा तारक लोको स ट
ा० छिप जात य मधुमास
निशा क अभिसारो को लट ।

जरा जिसम आशा क दीप
तुम्हारी करती थी मन ार
हुआ व० उच्छवासा का नीड
रुदन का सना वप्नागार
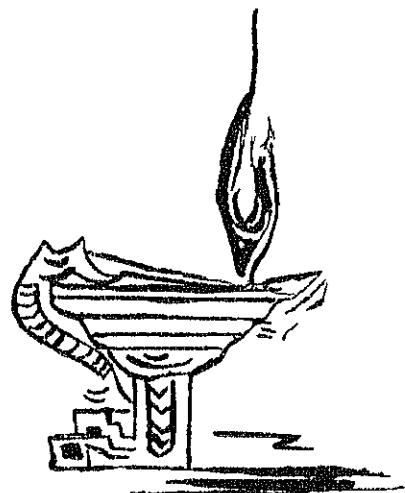
हृदय पर अकित कर सकुमार
तम ारी जव०ा की चोट
छिपाती हू पथ म करुणश
छलकी ऑग हसत ओठ ।
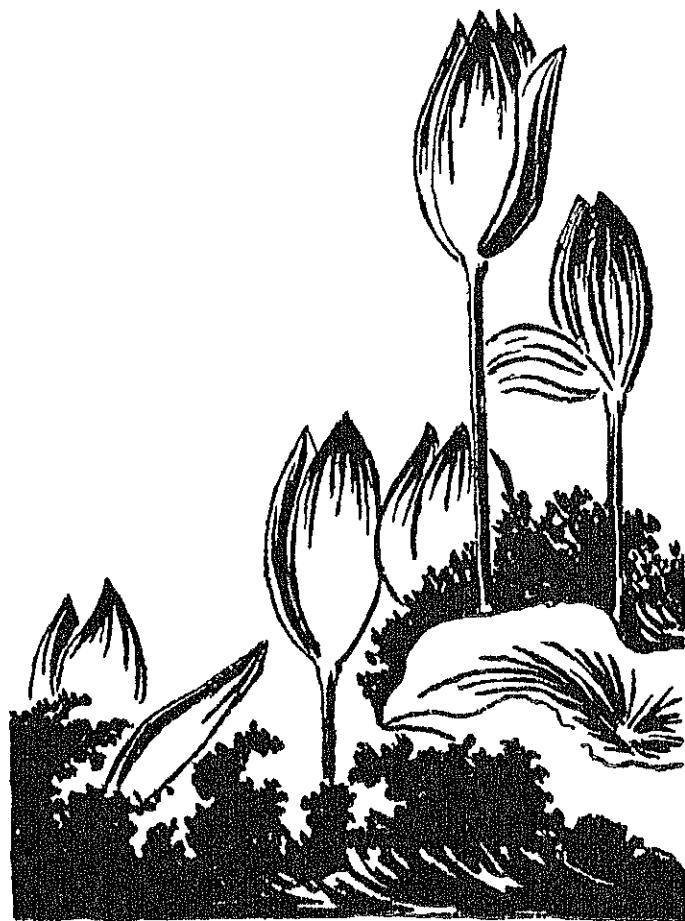
स्वग का था नीरव उच्छ्वास
दव वीणा का टटा तार
मृ य का क्षणभगर उपहार
र न वह प्राणो का शृङ्गार

नइ आशाओ का उपवन
मधर वह था मरा जीवन !

क्षीरनिधि की थी सुप्त तरङ्ग
सरलता का यारा निझर
हमारा वह सोन का स्वप्न
प्रम की चमकीली आकर

शुभ्र जो था निमघ गगन
सभग मरा सगी जीवन !

अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान
दिखाकर माया का साम्राज्य
बना डाला इसको अज्ञान?
मोह मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन!

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज
असम्भव है चिर सम्मिलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन!

तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता सपनों का हास
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भोले जीवन!

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द
यहाँ किसका अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!

छलकती जाती है दिन रैन
लबालब तेरी प्याली मीत!

ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता संगीत

करो नयनों का उन्मीलन
क्षणिक है मतवाले जीवन!

शून्य से बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झंकार

इसी छोटे प्याले में आज
डुबा डालो सारा संसार

लजा जाये यह मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन?

सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा सङ्ग

यहाँ मिलता काँटों में बन्धु!
सजीला सा फूलों का रङ्ग

तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन
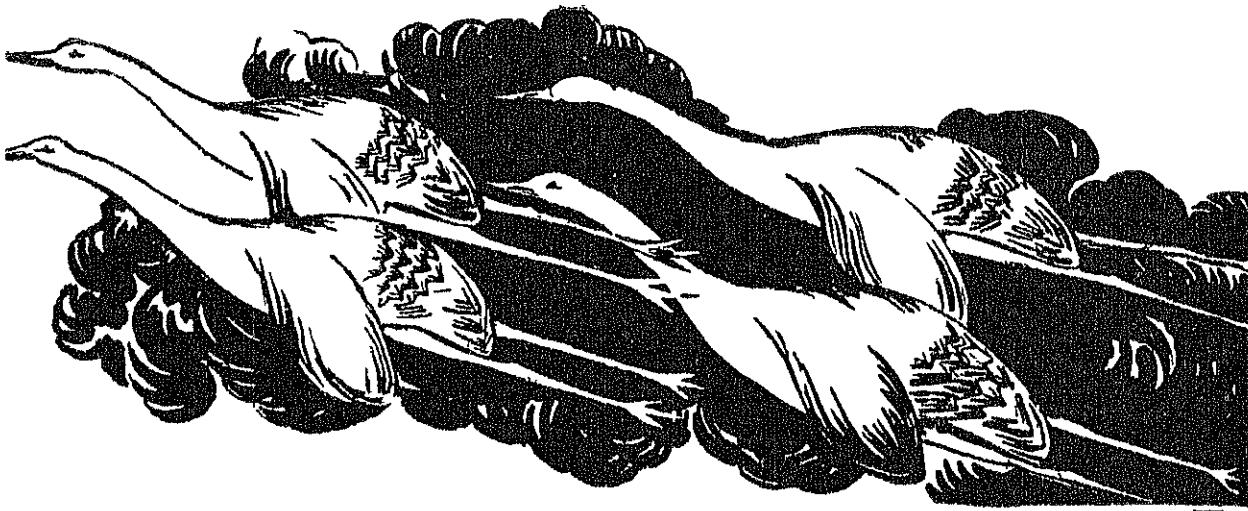
हुए हैं कितने अन्तर्धान
छिन्न होकर भावों के हार
घिरे घन से कितने उच्छ्वास
उड़े हैं नभ में होकर क्षार !

शून्य को छूकर आये लौट
मूक होकर मेरे निश्वास
बिखरती हैं पीड़ा के साथ
चूर होकर मेरी अभिलाष !

छा रही है बनकर उन्माद
कभी जो थी अस्फुट झंकार
काँपता सा आँसू का बिन्दु
बना जाता है पारावार !

खोज जिसकी वह है अज्ञात
शून्य वह है भेजा जिस देश
लिये जाओ अनन्त के पार
प्राण वाहक सूना सन्देश !

जिस न्नि नीरव तारो स
बोन्गी किरणो की अऌक
सो जाओ अ्नसाइ ह
सकमार तम्ारी पऌक !

जब इन फऌो पर मधु की
पहऌी बद बिखरी थी
आँख पकज की न्खी
रवि न मनुहार भरी सी !

दीपकमय कर डान्ग जब
जऌकर पतङ्ग न जीवन
सीखा बाल्क मधो न
नभ क आँगन म रो न

उजियारी अवगण्ठन म
विध न रजनी को दखा
तब स म ढढ रही हू
उनक चरणो की रखा !

म फन्गो म रोती व
बालारुण म मस्कात
म पथ म बिछ जाती हू
व सौरभ म उड जात !

व कहत ह उनको म
अपनी पनऌी म दख
यह कौन बता जायगा
किसम पनऌी को दख ?

मरी पऌको पर रात
बरसाकर मोती सार
कहती क्या दख रह ह
अविराम तम्हार तार ?

तम न इन पर अन्जन से
धन बन कर चादर तानी
इन पर प्रभात न फरा
आकर सोन का पानी !

इन पर सौरभ की सास
रुट रुठ जाती दीवानी
यह पानी म बठी ह
बन स्व न लोक की रानी !

कितनी बीती पतझार
कितन मध क दिन ाय
मरी मधमय पीडा को
कोइ पर ढढ न पाय !

झिप झिप आख कहती ह
य कसी ह अनहोनी ?
हम और नही खलगी
उनस यह आँखमिचौनी !
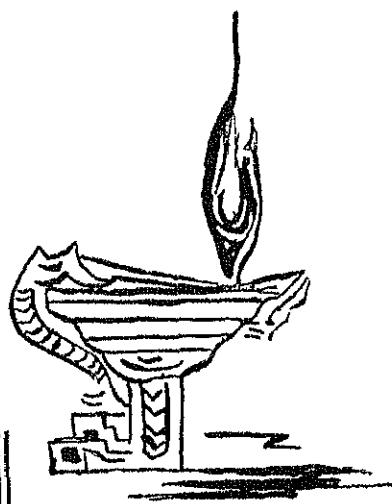
अपन जजर अञ्चल म
भरकर सपनो की माया
इन थक हुए प्राणो पर
छाइ विस्मृति की छाया !

मर जीवन की जागति !
दखो फिर भूल न जाना
जो व सपना बन आव
तुम चिरनिद्रा बन जाना !

जहाँ ह निद्राम न वस त
तम्ही हो वह सखा उद्यान
तम्ही हो नीरवता का रा य
जहाँ खोया प्राणो न गान

निराली सी ऑस की बँ
छिरा जिसम असीम अवसा
हला ल या मन्दिरा का घँ
डबा जिसन डाला उमा !

जहाँ बन्दी मुरझाया फल
कली की हो एसी मस्कान
ओसकन का छोटा आकार
छिपा जो लता ह तफान

जहाँ रोता ह मौन अतीत
सखी ! तुम हो एसी झकार
जहाँ बाती आलोक समाधि
तुम्ही हो एसा अधाकार !
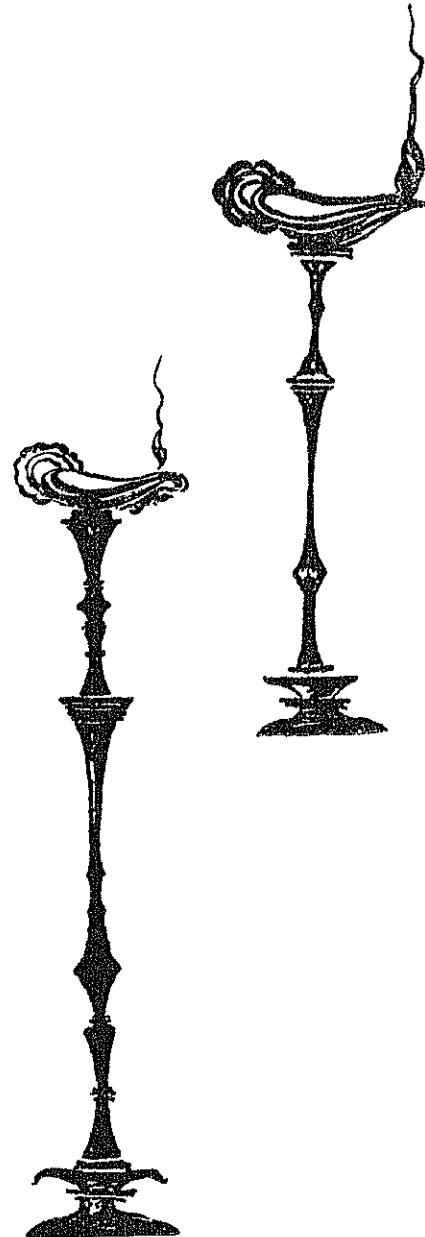
नभ ने इन पर अञ्जन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी।

इन पर सौरभ की साँसें
लुट लुट जाती दीवानी,
यह पानी मे बैठी है
बन स्वप्न-लोक की रानी।

कितनी बीती पतझारें
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीडा को
कोई पर ढूढ न पाये।

झिप झिप आँखे कहती है
'यह कैसी है अनहोनी?
हम और नही खेलेगी
उनमे यह आँखमिचौनी।'

अपने जर्जर अञ्चल मे
भरकर सपनो की माया
इन थके हुए प्राणो पर
छाई विस्मृति की छाया।

मेरे जीवन की जागृति!
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवे
तुम चिरनिद्रा बन जाना।

जहाँ है निद्रामग्न वसन्त
तुम्हीं हो वह सूखा उद्यान,
तुम्हीं हो नीरवता का राज्य
जहाँ खोया प्राणों ने गान,

निराली सी आँसू की बूँद
छिपा जिसमें असीम अवसाद,
हलाहल या मदिरा का घूँट
डुबा जिसने डाला उन्माद !

जहाँ बन्दी मुरझाया फूल
कली की हो ऐसी, मुस्कान,
ओसकन का छोटा आकार
छिपा जो लेता है तूफान,

जहाँ रोता है मौन अतीत
सखी ! तुम हो ऐसी झंकार,
जहाँ बनती आलोक-समाधि
तुम्हीं हो ऐसा अन्धाकार !
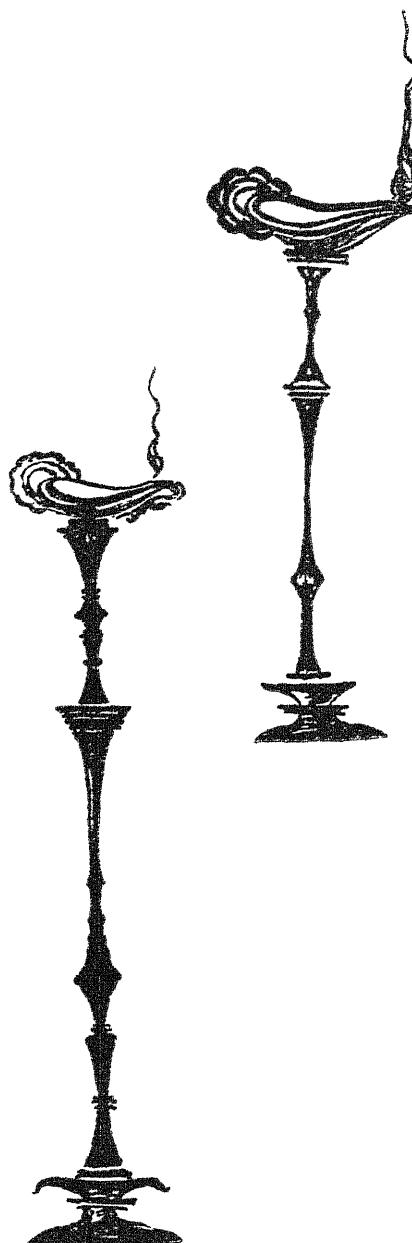
जहाँ मानस के रत्न विलीन
तुम्हीं हो ऐसा पारावार
अपरिचित हो जाता है मीन
तुम्हीं हो ऐसा अञ्जनसार!

मिटा देता आँसू के दाग
तुम्हारा यह सोने सा रङ्ग,
डुबा देती बीता संसार
तुम्हारी यह निस्तब्ध तरङ्ग!

भस्म जिसमें हो जाता काल
तुम्हीं वह प्राणों का संन्यास,
लेखनी हो ऐसी विपरीत
मिटा जो जाती है इतिहास,

साधनाओं का दे उपहार
तुम्हें पाया है मैंने अन्त,
लुटा अपना सीमित ऐश्वर्य
मिला है यह वैराग्य अनन्त!

भुला डालो जीवन की साध
मिटा डालो बीते का लेश,
एक रहने देना यह ध्यान
क्षणिक है यह मेरा परदेश!
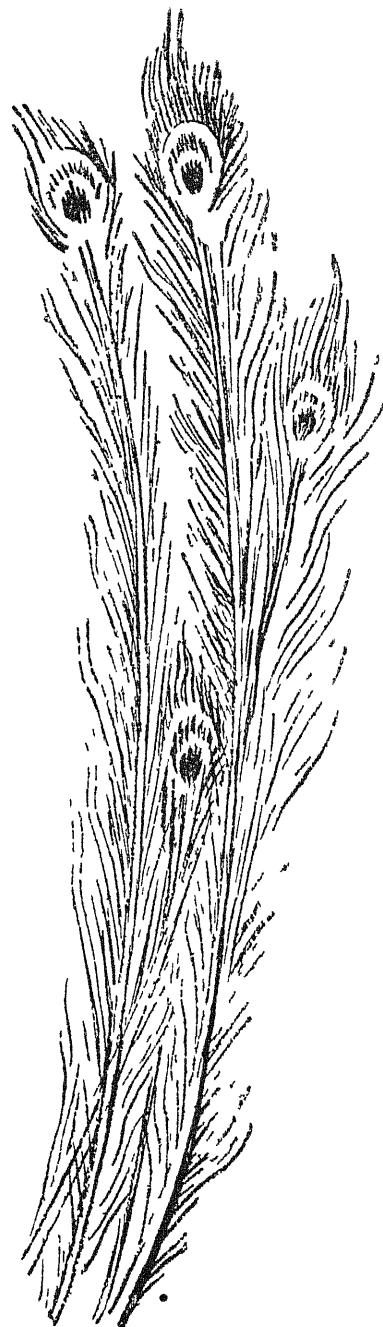
गरजता सागर तम है घोर
घटा घिर आई सूना तीर,
अँधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो कैसे बेपीर ?

नही है तरणी कर्णधार
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्मम देव !
एक बस तेरा ही सन्देश !

हाथ मे लेकर जर्जर बीन
इन्ही बिखरे तारो को जोड,
लिये कैसे पीडा का भार
देव आऊँ अनन्त की ओर ?

झूमते से सौरभ के साथ
लिये मिटते स्वप्नों का हार,
मधुर जो सोने का संगीत
जा रहा है जीवन के पार,
तुम्हीं अपने प्राणों में मौन
बाँध लेते उसकी झंकार!

काल की लहरों में अविराम
बुलबुले होते अन्तर्धान,
मञ्जु उनका छोटा ऐश्वर्य
डूबता लेकर प्यासे प्राण,
समाहित हो जाती वह याद
हृदय में तेरे हे पाषाण!

पिघलती आँखों के सन्देश
आँसुओं के वे पारावार,
भग्न आशाओं के अवशेष
जली अभिलाषाओं के क्षार,
मिलाकर उच्छ्वासों की धूलि
रँगाई है तूने तस्वीर।

गूँथ बिखरे सूखे अनुराग
बीन करके प्राणो के दान,
मिले रज मे सपनो को ढूढ
खोज कर वे भूल आह्वान ,
अनोखे से माली निर्जीव
बनाई है आँसू की माल!

मिटा जिनको जाना है काल
अमिट करते हो उनकी याद,
डुबा देना जिसको तूफान
अमर कर देते हो वह भाव,
मूक जो हो जाती है चाह
तुम्ही उसका देते सन्देश!

राख मे सोने का साम्राज्य
शून्य मे रखते हो संगीत,
धूल से लिखते हो इतिहास
बिन्दु मे भरते हो वारीश ,
तुम्ही मे रहता मूक वसन्त
अरे सूखे फूलो के हास!
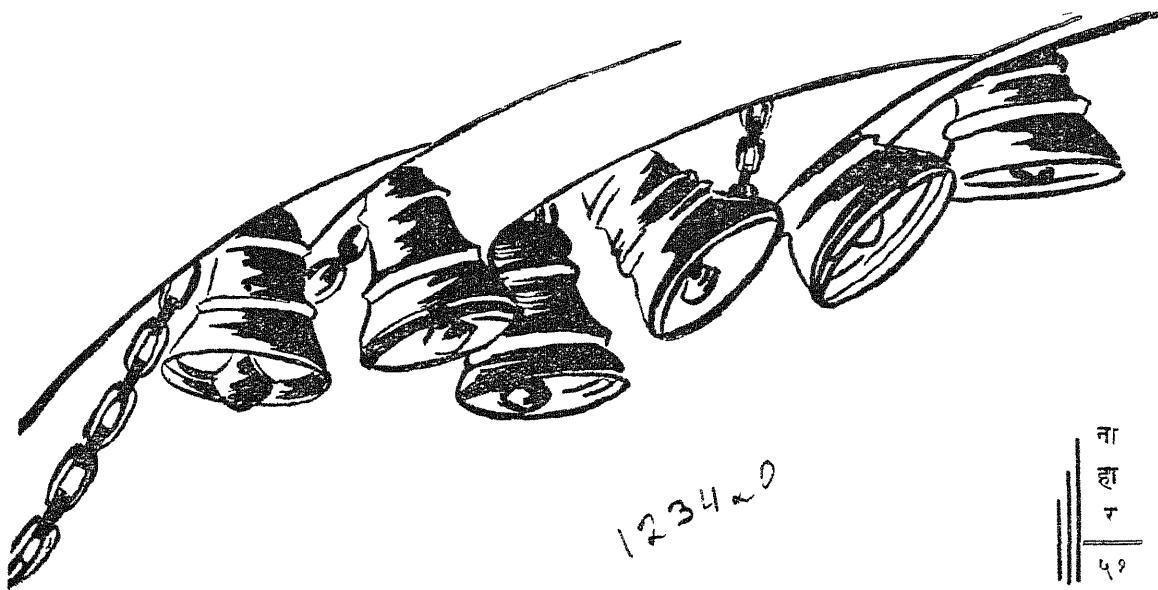
झिलमिल तारो की पलको मे
स्वप्निल मुस्कानो को ढाल,

मधुर वेदनाओ से भर के
मेघो के छायामय थाल,

रँग डाले अपनी लाली म
गूथ नये ओसो के हार,

विजन विपिन मे आज बावली
बिखराती हो क्यो शृगार ?

फूलो के उच्छ्वास बिछाकर
फैला फैला स्वर्ण-पराग,

विस्मृति सी तुम मादकता सी
गाती हो मदिरा सा राग,

जीवन का मधु बेच रही हो
मतवाली आँखो मे घोल,

क्या लोगी ? क्या कहा सजनि
'इसका दुखिया आँसू है मोल !'

मूक करके मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद,
जलाना प्राणो को चुपचाप
छिपाये रोता अन्तर्नाद,
कहाँ सीखी यह अद्भुत प्रीति ?
मुग्ध हे मेरे छोटे दीप !

चुराया अन्तस्तल मे भेद
नही तुमको वाणी की चाह,
भस्म होते जाते है प्राण
नही मुख पर आती है आह,
मौन मे सोता है सगीत—
लजीले मेरे छोटे दीप !

क्षार होता जाता है गान
वेदनाओ का होता अन्त,
किन्तु करते रहते हो मौन
प्रतीक्षा का आलोकित पन्थ,
सिखा दो ना नेही की रीति—
अनोखे मेरे नेही दीप !

पडी है पीडा सज्ञाहीन
साधना मे डूबा उद्गार,
ज्वाल मे बैठा हो निस्तब्ध
स्वर्ण बनता जाता है प्यार,
चिता है तेरी प्यारी मीत—
वियोगी मेरे बुझते दीप !

अनोखे से नेही के त्याग !
निराले पीडा के ससार !
कहाँ होते हो अन्तर्धान
लुटा अपना सोने सा प्यार ?
कभी आयेगा ध्यान अतीत—
तुम्हे क्या निर्वाणोन्मुख दीप ?

तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ
इन्हीं ने काटी काली रात,
निराशा का सूना निर्माल्य
चढ़ाकर देखा फीका प्रात!

इन्हीं पलकों ने कंटक हीन
किया था वह पथ हे बेपीर,
जहाँ से छूकर तेरे अंग
कभी आता था मन्द समीर!

सजग रखती थीं तेरी राह
सुलाकर प्राणों में अवसाद,
पलक प्यालों में पी पी देव!
मधुर आसव सी तेरी याद!

गगन जल का जल ही परिधान
रचा था बूँदों में संसार,
इन्हीं नीले तारों में मुग्ध
साधना सोती थी साकार!

आज आये हो हे करुणेश!
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अंग
करो दो आँखों का निर्माण!

विस्मृति तिमिर मे दीप हो
भवितव्य का उपहार हो,
बीते हुए का स्वप्न हो
मानव-हृदय का सार हो,

तुम सान्त्वना हो दैव की
तुम भाग्य का वरदान हो,
टूटी हुई झकार हो
गतकाल की मुस्कान हो।

उस लोक का सन्देश हो
इस लोक का इतिहास हो,
भूले हुए का चित्र हो
सोई व्यथा का हास हो

अस्थिर चपल ससार ने
तुम हो प्रदर्शक सगिनी,
निस्सार मानस-कोष मे
हो मजु हीरक की कनी!

दुर्दैव न उर पर हमारे
चित्र को अकित किये,
देकर सजीला रग तुमने
सर्वदा रजित किए,

तुम हो सुधाधारा सदा
सूखे हुए अनुराग को,
तुम जन्म देती हो सजनि!
आसक्ति को वैराग्य को!

तेरे विना ससार मे
मानव-हृदय श्मशान है,
तेरे विना हे सगिनी!
अनुराग का क्या मान है?

गिरा जब हो जाती है मौन
देख भावों का पारावार,
तोलते हैं जब बेसुध प्राण
शून्य से करुणकथा का भार,
मौन बन जाता आकर्षण
वहीं मिलता नीरव भाषण!

जहाँ बनता पतझार वसन्त
जहाँ जागृति बनती उन्माद,
जहाँ मदिरा देती चैतन्य
भूलना बनता मीठी याद,
जहाँ मानस का मुख मिलन
वहीं मिलता नीरव भाषण!

जहाँ विष देता है अमरत्व
जहाँ पीडा है प्यारी मीत,
अश्रु हैं नैनो का शृंगार
जहाँ ज्वाला बनती नवनीत,
मृत्यु बन जाती नवजीवन
वहीं रहता नीरव भाषण!

नहीं जिसमे अनन्त विच्छेद
बुझा पाता जीवन की प्यास,
करुण नयनो का सचित मौन
सुनाता कुछ अतीत की बात,
प्रतीक्षा बन जाती अञ्जन
वहीं मिलता नीरव भाषण!

पहन कर जब आँसू के हार
मुस्कराती वे पुतली श्याम,
प्राण मे तन्मयता का हास
मागता है पीडा अविराम,
वेदना बनती सजीवन
वही मिलता नीरव भाषण !

जहाँ मिलता पकज का प्यार
जहाँ नभ मे रहता आराध्य,
ढाल देना प्राणो मे प्राण
जहाँ होती जीवन की साध,
मौन बन जाता आवाहन
वही रहता नीरव भाषण !

जहा हे भावो का विनिमय
जहा इच्छाओ का सयोग,
जहा सपनो मे है अस्तित्व
कामनाओ मे रहता योग,
महानिद्रा बनता जीवन
वही मिलता नीरव भाषण !

जहाँ आशा बनती नैराश्य
राग बन जाता है उच्छ्वास,
मधुर वीणा है अन्तर्नाद
तिमिर मे मिलता दिव्य प्रकाश,
हास बन जाता है रोदन
वही मिलता नीरव भाषण !

जिन चरणों पर देव लुटाते—
ये अपने अमरों के लोक,
नखचन्द्रों की कान्ति लजाती
थी नक्षत्रों के आलोक,
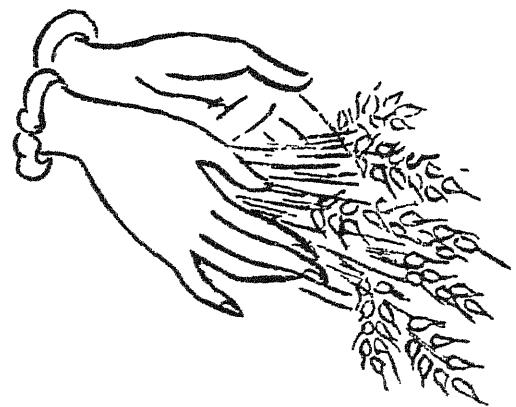
रवि-शशि जिन पर चढ़ा रहे थे
अपनी आभा अपना राज,
जिन चरणों पर लोट रहे थे
सारे सुख सुषमा के साज !

जिनकी रज धो धो जाता था
मेघों का मोती सा नीर,
जिनकी छबि अंकित कर लेता
नभ अपना अन्तस्तल चीर,

मैं भी भर झीने जीवन में
इच्छाओं के रुदन अपार,
जला वेदनाओं के दीपक
आई उस मन्दिर के द्वार !

क्या देता मेरा सूनापन
उनके चरणों को उपहार ?
बेसुध सी मैं धर आई
उन पर अपने जीवन की हार !

मधुमाते हो विहँस रहे थे
जो नन्दन कानन के फूल,
हीरक बनकर चमक गई
उनके अंचल में मेरी भूल !

उच्छ्‌वासो की छाया मे
पीडा के आलिङ्गन मे,
निश्वासो के रोदन मे
इच्छाओ के चुम्बन मे,

सूने मानस-मन्दिर मे
सपनो की मुग्ध हँसी मे,
आशा के आवाहन मे
बीते की चित्रपटी में,

रजनी के अभिसारो में
नक्षत्रो के पहरो मे,
ऊषा के उपहासो मे
मुस्काती सी लहरो मे।

उस थकी हुई सोती सी
ज्योत्स्ना की मृदु पलको मे,
बिखरी उलझी हिलती सी
मलयानिल की अलको मे,

जो बिखर पडे निर्जन में
निर्भर सपनो के मोती,
मै ढूँढ रही थी लेकर
धुंधली जीवन की ज्योती,

उस सूने पथ मे अपने
पैरो की चाप छिपाये,
मेरे नीरव मानस मे
वे धीरे धीरे आये।

मेरी मदिरा मधुवाली
आकर सारी ढुलका दी,
हँसकर पीडा से भर दी
छोटी जीवन की प्याली!

मेरी बिखरी वीणा के
एकत्रित कर तारो को,
टूटे सुख के सपने दे
अब कहते है गाने को!

यह मुरझाये फूलो का
फीका सा मुस्काना है,
यह सोती सी पीडा को
सपनो मे ठुकराना है!

गोधूली के ओठो पर
किरणो का बिखराना है,
यह सूखी पखडियो मे
मारुत का इठलाना है!

इस मीठी सी पीडा मे
डूबा जीवन का प्याला,
लिपटी सी उतराती है
केवल आँसू की माला!

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुओं से सहमे अभिराम
तारकों से हे मूक अजान !

सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमलप्राण ?

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग,
नये पल्लव का घूँघट डाल
अछूता ले अपना मकरन्द,

ढूँढ पाया कैसे यह देश,
स्वर्ग के हे मोहक सन्देश ?

रजत किरणो से नयन पखार
अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष,
चले आये एकाकी पार,

कहो क्या आये हो पथ भूल
मञ्जु छोटे मुस्काते फूल ?

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पडता तेरा उन्माद,
देख तारो के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद ?

हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट ?

चाँदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखो की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
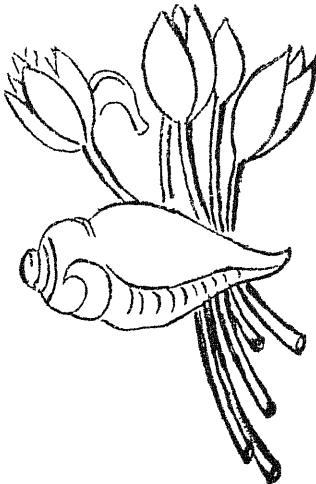
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?

कौन वह है सम्मोहन राग
खीच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हे भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?

हँसो पहनो काँटो के हार
मधुर भोलेपन के संसार !

प्रथम प्रणय की सुषमा सा
यह कलियो की चितवन मे कौन
कहता है 'मैने सीखा उनकी?
आँखो से सस्मित मौन' ।

घूघट पट से झाँक सुनाते
अरुणा के आरक्त कपोल,
'जिसकी चाह तुम्हे है उसने
छिडकी मुझ पर लाली घोल' ।

कहते है नक्षत्र 'पडी हम पर
उस माया की झाई',
कह जाते वे मेघ 'हमी उसकी—
करुणा की परछाई' ।

वे मन्थर सी लोल हिलोरे
फैला अपने अचल छोर,
कह जाती 'उस पार बुलाता—
है हमको तेरा चितचोर' ।

यह कैसी छलना निर्मम
कैसी तेरा निष्ठुर व्यापार !
तुम मन मे हो छिपे मुझे
भटकाता है सारा ससार !
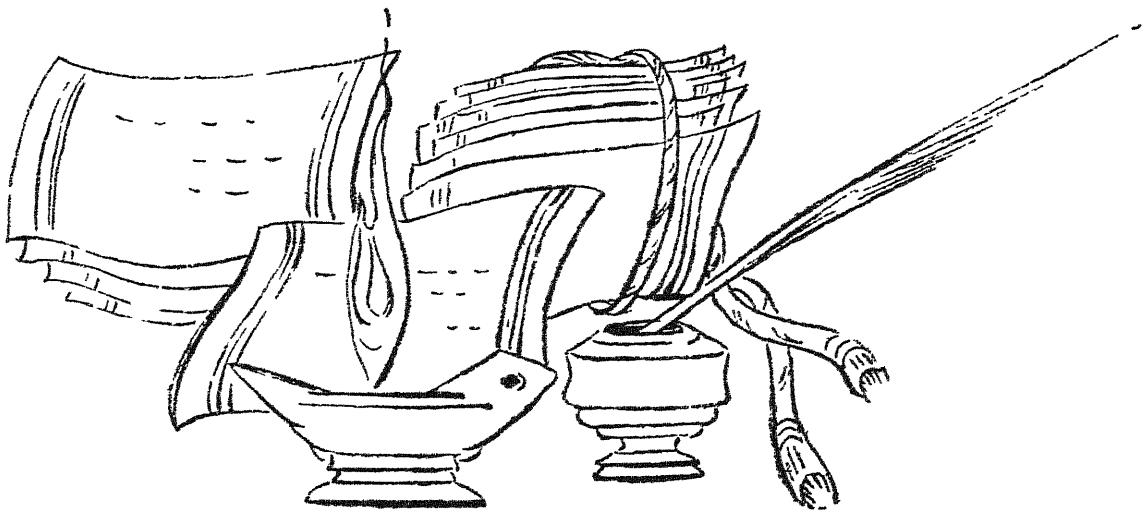
जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने सँदेश

पथ में बिछ जाते बन पराग,

गाता प्राणों का तार तार

अनुराग भरा उन्माद राग,

आँसू लेते वे पद पखार !

हँस उठते पल में आर्द्र नयन

धुल जाता ओठों से विषाद,

छा जाता जीवन में वसन्त

लुट जाता चिर संचित विराग,

आँखें देतीं सर्वस्व वार !

जिसमे नही सुवास नही जो
करता सौरभ का व्यापार,

नही देख पाता जिसकी
मुस्कानो को निष्ठुर ससार !

जिसके आँसू नही माँगते
मधुपो से करुणा की भीख,

मदिरा का व्यवसाय नही
जिसके प्राणो ने पाया सीख !

मोती बरसे नही न जिसको
छू पाई उन्मत्त बयार,

देखी जिसने हाट न जिस पर
ढुल जाता माली का प्यार !

चढा न देवो के चरणो पर
गूँथा गया न जिसका हार,

जिसका जीवन बना न अबतक
उन्मादो का स्वप्नागार !

निर्जनता के किसी अँधेरे
कोने में छिपकर चुपचाप,

स्वप्नलोक की मधुर कहानी
कहता सुनता अपने आप !

किसी अपरिचित डाली से
गिरकर जो नीरस वन का फूल,

फिर पथ में बिछकर आँखों में
चुपके से भर लेता धूल !

उसी सुमन सा पल भर हँसकर
सूने में हो छिन्न मलीन,

झर जाने दो जीवन-माली
मुझको रहकर परिचय हीन !
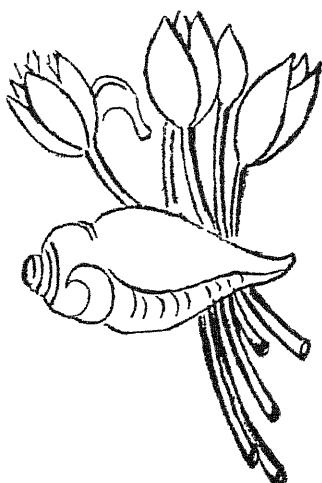
द्वितीय याम

रश्मि

।

रचना काल
१९२८-१९३१

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान !

इन कनकरश्मियों मे अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग,
बुद्‌बुद मे बह चलते अपार,
उसमे विहगो के मधुर राग,
बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान !

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गए इन्द्रधनुषी वितान,
दे मृदु कलियो की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण,
धो स्वर्ण-प्रात मे तिमिर-गात
दुहराते अलि निशि–मूक तान !

सौरभ का फैला केश-जाल,
करती समीर-परियाँ विहार,
गीली केसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार,
मर्मर का मधुसगीत छेड़––
देते है हिल पल्लव अजान !

फैला अपने मृदु स्वप्न-पख,
उड गई नीद-निशि क्षितिज पार,
अधखुले दृगो के कज-कोष––
पर छाया विस्मृति का खुमार,
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि-विहान !

किस सुधि-वसन्त का सुमन-तीर,
कर गया मुग्ध मानस अधीर !

वेदना-गगन से रजतओस,
चू चू भरती मन-कंज-कोष,
अलि सी मंडराती विरह-पीर !

मंजरित नवल मृदु देह-डाल,
खिल खिल उठता नव पुलक-जाल,
मधु-कन सा छलका नयन-नीर !

अधरों से झरता स्मित-पराग,
प्राणों में गूँजा नेह-राग,
सुख का बहता मलयज समीर !

घुल घुल जाता यह हिम-दुराव,
गा गा उठते चिर मूक भाव,
अलि सिहर सिहर उठता शरीर !
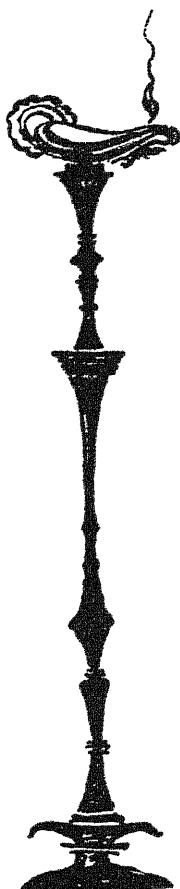
शून्यता मे निद्रा की बन,
उमड आते ज्यो स्वप्निल धन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार
छलक मधु मे होती साकार,

हुआ त्यो सूनेपन का भाव,
प्रथम किसके उर मे अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण ?

काल सीमा के सगम पर
मोम सी पीडा उज्ज्वल कर,
उसे पहनाई अवगुण्ठन,
हास औ' रोदन से बुन बुन !

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?

शून्य नभ मे तम का चुम्बन,
जला देता असख्य उडुगण,
बुझा क्यो उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूक ?

रजतप्याले मे निद्रा ढाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियो मे आँसू घोल,
चुकाना पडता किसको मोल ?

पोछती जब हौले से वात,
इधर निशि के आँसू अवदात,
उधर क्यो हँसता दिन का बाल,
अरुणिमा से रजित कर गाल ?

कली पर अलि का पहला गान
थिरकता जब बन मृदु मुस्कान,
विफल सपनों के हार पिघल
ढुलकते क्यों रहते प्रतिपल ?

गुलाबों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण पराग,

उसे तम की बढ़ एक झकोर
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन-विनाश
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

किसी की व्यथा-सिक्त चितवन
जगाती कण कण में स्पन्दन,
गूँथ उनकी साँसों के गीत
कौन रचता विराट संगीत ?

प्रलय बनकर किसका अनुताप
डुबा जाता उसको चुपचाप ?

आदि में छिप आता अवसान
अन्त में बनता नव्य विधान,
सूत्र ही है क्या यह संसार
गुँथे जिसमें सुख-दुख जय-हार ?
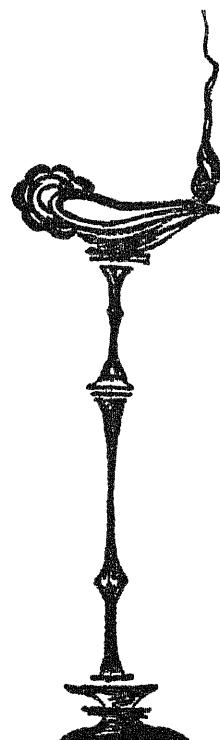
क्यों इन तारों को उलझाते?
अनजाने ही प्राणों में क्यों
आ आ कर फिर जाते?

पल में रागों को झंकृत कर,
फिर विराग का अस्फुट स्वर भर,

मेरी लघु जीवन-वीणा पर
क्या यह अस्फुट गाते?

लय में मेरा चिर करुणा-धन,
कम्पन में सपनों का स्पन्दन,

गीतों में भर चिर सुख चिर दुख
कण कण में बिखराते!

मेरे शैशव के मधु में घुल,
मेरे यौवन के मद में ढुल,

मेरे आँसू स्मित में हिलमिल
मेरे क्यों न कहाते?
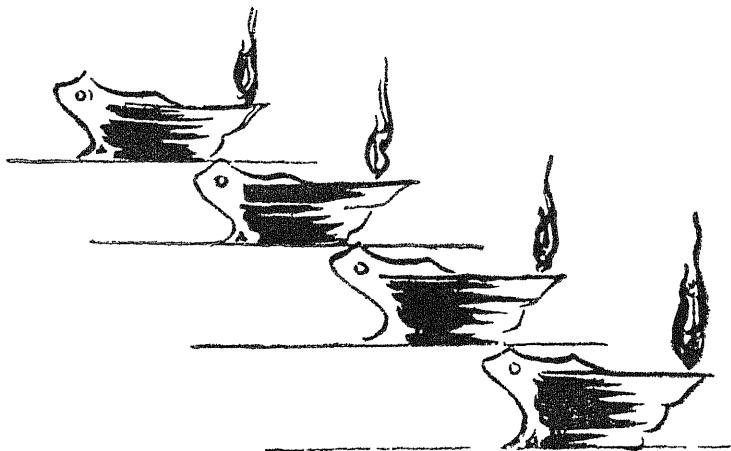
रजतरश्मियो की छाया मे धूमिल घन सा वह आता,
इस निदाघ से मानस मे करुणा के स्रोत बहा जाता !

उसमे मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का
एक सूत्र सबके बन्धन का
ससृति के सूने पृष्ठो मे करुणकाव्य वह लिख जाता !

वह उर मे आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब न कृपण बन'
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग-द्वारो को खोल विश्व-भिक्षुक पर, हस बरसा आता !

यह जग है विस्मय से निर्मित,
मूक पथिक आते जाते नित
नही प्राण प्राणो से परिचित,
यह उनका सकेत नही जिसके बिन विनिमय हो पाता !

मृगमरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासो के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मै मधु हू मुझसे क्या पतझर का नाता' !

दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण मे आसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस मे वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता !

चिर तृप्ति कामनाओ का
कर जाती निष्फल जीवन

बुझते ही प्यास हमारी
पल मे विरक्ति जाती बन !

पूर्णता यही भरने की
ढुल, कर देना सूने घन,

सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन !

चिर ध्येय यही जलने का
ठंढी विभूति बन जाना,

है पीडा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना !

मेरे छोटे जीवन मे
देना न तृप्ति का कण भर,

रहने दो प्यासी आँखे
भरती आँसू के सागर !

चिर मिलन-विरह-पुलिनो की
सरिता हो मेरा जीवन ,

प्रतिपल होता रहता हो
युग कूलो का आलिङ्गन !

तुम रहो सजल आँखो की
सित-असित मुकुरता बन कर,

मै सब कुछ तुम से देखू
तुमको न देख पाऊ पर !

इस अचल क्षितिज-रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के,

पर तुम्हें पकड पाने के
सारे प्रयत्न हो फीके !

द्रुत पखोवाले मन को
तुम अन्तहीन नभ होना,

युग उड़ जावे उडते ही
परिचित हो एक न कोना !

तुम अमर प्रतीक्षा हो, मै
पग विरह-पथिक का धीमा,

आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पथ की सीमा !

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुख की अवगुण्ठन मे,

मैं तुम्हे ढूढने के मिस
परिचित हो लूँ कण कण मे!

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन आऊ,

काटूँ वियोग पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ!

आवे बन मधुर मिलन-क्षण
पीडा की मधुर कसक सा,

हँस उठे विरह ओठो मे
प्राणो में एक पुलक सा!

पाने में तुमको खोऊँ
खोने मे समझूँ पाना,

यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना!

गूँथ विषाद के मोती
चाँदी सी स्मित के डोरे,

हो मेरे लक्ष्य-क्षितिज की
आलोक-तिमिर दो छोरे!
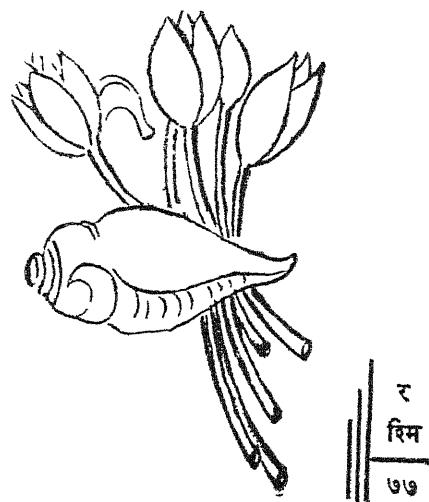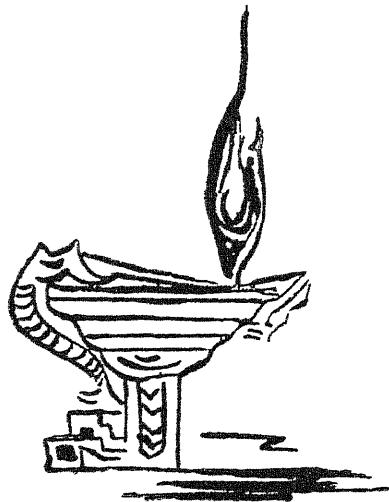
किन उपकरणो का दीपक,
किसका जलता है तेल ?
किसकी वर्त्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल ?

शून्य काल के पुलिनो पर—
आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरो मे
वह रहस्यमय कौन ?

कुहरे सा धुंधला भविष्य है
है अतीत तम घोर,
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर ?

पावस की निशि मे जुगनू का—
ज्यों आलोक - प्रसार,
इस आभा में लगता तम का
और गहन विस्तार !

इन उत्ताल तरङ्गो पर सह—
झंझा के आघात,
जलना ही रहस्य है बुझना—
है नैसर्गिक बात !

कुमुद-दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियाँ
चौंक उठतीं अनिल के निश्वास छू
तारिकायें चकित सी अनजान सी,

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

शून्य नभ पर उमड़ जब दुखभार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी,

तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

जब कपोल-गुलाब, पर शिशुप्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से,
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,

स्वप्न-शाला में यवनिका डाल जो
तब दृगों को खोलता वह कौन है ?
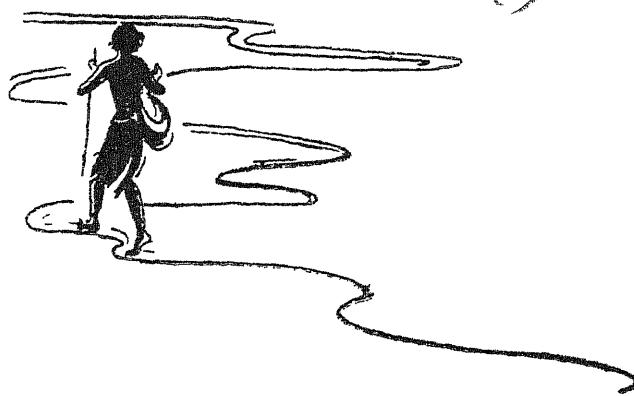
तुहिन के पुलिनो पर छबिमान
किसी मधुदिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान
वेदना का ज्यो छाया-दान,

विश्व मे यह भोला जीवन—
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बाँध अचल मे विस्मृति-धन
कर रहा किसका अन्वेषण ?

धूलि के कण म नभ सी चाह
बिन्दु मे दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन मे स्वप्न अपार
एक पल असफलता का भार,

सास म अनुतापो का दाह
कल्पना का अविराम प्रवाह,
यही तो है इसके लघु प्राण
शाप वरदानो के सन्धान !

भरे उर मे छबि का मधुमास
दृगो मे अश्रु अधर मे हास,
ले रहा किसका पावस-प्यार
बिपुल लघु प्राणो मे अवतार ?

नील नभ का असीम विस्तार
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्झर वीचि-विलास
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास,

धरा से ले परमाणु उधार,
किया किसने मानव साकार ?

दृगों में सोते हैं अज्ञात
निदाघों के दिन पावस-रात,
सुधा का मधु हाला का राग
व्यथा के घन अतृप्ति की आग !

छिपे मानस में पवि नवनीत
निमिष की गति निर्झर के गीत,
अश्रु की ऊर्म्मि हास का वात
कुहू का तम माधव का प्रात !

हो गये क्या उर में वपुमान
क्षुद्रता रज की नभ का मान,
स्वर्ग की छवि रौरव की छाँह
शीत हिम की बाड़व का दाह ?

और—यह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिलकर नादान
उसी में होता अन्तर्धान ?

काल के प्याले में अभिनव
ढाल जीवन का मधु-आसव,
नाश के हिम-अधरों से, मौन
लगा देता है आकर कौन ?

बिखर कर कन कन के लघुप्राण
गुनगुनाते रहते यह तान,
'अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास'।

दूर है अपना लक्ष्य महान
एक जीवन पग एक समान,
अलक्षित परिवर्तन की डोर
खींचती हमें इष्ट की ओर।

छिपा कर उर में निकट प्रभात
गहनतम होती पिछली रात,
सघन वारिद अम्बर में छूट
सफल होते जल-कण में फूट।

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक-प्रसार,
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण।

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास
विफलता में है पूर्ति-विकास।

फूलों का गीला सौरभ पी
बेसुध सा हो मन्द समीर,
भेद रहे हों नैश तिमिर को
मेघों के बूंदों के तीर!

नीलम-मन्दिर की हीरक—
प्रतिमा सी हो चपला निस्पन्द,
सजल इन्दुमणि से जुगनू
बरसाते हों छवि का मकरन्द!

बुद्बुद् की लड़ियों में गूँथा
फैला श्यामल केश-कलाप
सेतु बाँधती हो सरिता सुन—
सुन चकवी का मूक विलाप!

तब रहस्यमय चितवन से—
छू चौंका देना मेरे प्राण,
ज्यों असीम सागर करता है
भूले नाविक का आह्वान!

नव मेघो को रोता था
जब चातक का बालक मन,
इन आँखो मे करुणा के
घिर घिर आते थे सावन !

किरणो को देख चुराते
चित्रित पखो की माया,
पलके आकुल होती थी
तितली पर करने छाया !

जब अपनी निश्वासो से
तारे पिघलाती राते,
गिन गिन धरता था यह मन
उनके आँसू की पाँते !

जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियो मे लाली,
वह मृदु पुलको से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली !

घिर कर अविरल मेघो मे
जब नभमण्डल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओ से
मेरा मानस भर आता !

गर्जन के द्रुत तालो पर
चपला का बेसुध नर्तन,
मेरे मन-बालशिखी मे
सगीत मधुर जाता बन !

किस भाँति कहूँ कैसे थे
वे जग से परिचय के दिन,
मिश्री सा घुल जाता था
मन छूते ही आँसू-कन !

अपनेपन की छाया तब
देखी न मुकुर-मानस ने,
उसमें प्रतिबिम्बित सबके
सुख-दुख लगते थे अपने !

तब सीमाहीनो मे था
मेरी लघुता का परिचय,
होता रहता था प्रतिपल
स्मित का आँसू का विनिमय !

परिवर्तन-पथ मे दोनो
शिशु से करते थे क्रीडा,
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीडा !

यह दोनो दो ओरे थी
संसृति की चित्रपटी की,
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी !

किसने अनजान आकर
वह लिया चुरा भोलापन ?
उस विस्मृति के सपने से
चौंकाया छूकर जीवन !

जाती नवजीवन बरसा
जो करुण घटा कण कण मे,
निस्पन्द पड़ी सोती वह
अब मन के लघु बन्धन मे !

स्मित बनकर नाच रहा है
अपना लघु सुख अधरो पर,
अभिनय करता पलको मे
अपना दुख आँसू बनकर !

अपनी लघु निश्वासो में
अपनी साधो की कम्पन,
अपने सीमित मानस मे
अपने सपनो का स्पन्दन !

मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित,
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण मे निर्वासित !

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे सन्ध्या जाती,
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती !

अस्फुट मर्मर में, अपनी
गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्त पथ में नित-
सगीत बिछाते निर्झर !

यह साँसें गिनते गिनते
नभ की पलकें झप जातीं,
मेरे विरक्ति-अञ्चल में
सौरभ समीर भर जाती !

सुख टोह रहे हैं, मेरा
पथ में कब से चिर सहचर !
मन रोया ही करता क्यों
अपने एकाकीपन पर ?

अपनी कण कण में बिखरी
निधियाँ न कभी पहिचानीं,
मेरा लघु अपनापन है
लघुता की अकथ कहानी !

मैं दिन को ढूँढ रही हूँ
जुगनू की उजियाली में,
मन माँग रहा है मेरा
सिकता हीरक-प्याली में !
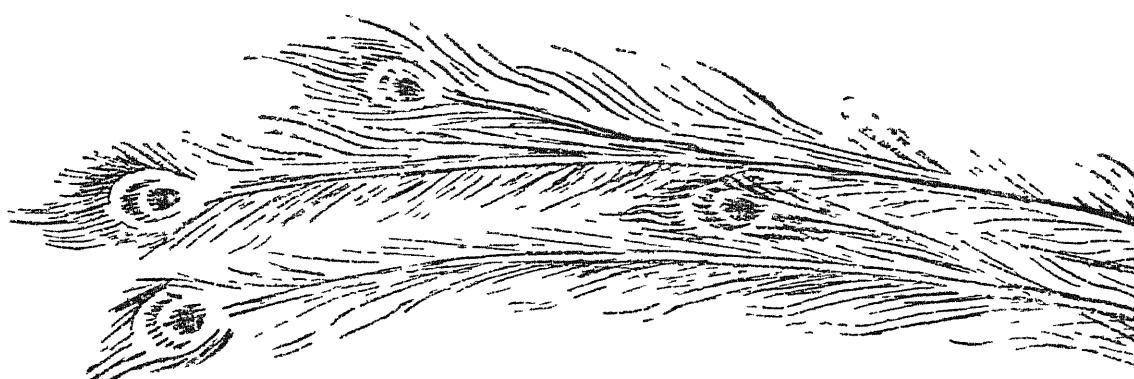
वे मधुदिन जिनकी स्मृतियो की
धुँधली रेखाये खोई
चमक उठेगे इन्द्रधनुष से
मेरे विस्मृति के घन मे

झंझा की पहली नीरवता—
थी नीरव मेरी साधे
भर देगी उन्माद प्रलय का
मानस की लघु कम्पन मे

सोने जो असख्य बुद्‌बुद् से
बेसुध सुख मेरे सुकुमार
फूट पडेगे दुखसागर की
सिहरी धीमी स्पन्दन मे

मूक हुआ जो शिशिर-निशा मे
मेरे जीवन का सगीत
मधु-प्रभात मे भर देगा वह
अन्तहीन लय कण कण मे !

स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान,
जान कब पाई हुआ उसका कहाँ निर्माण !

अचल पलकों में जड़ी सी तारिकायें दीन
ढूँढती अपना पता विस्मित निमेषविहीन !

गगन जो तेरे विशद अवसाद का आभास,
पूछता 'किसने दिया यह नीलिमा का न्यास' !

निठुर क्यों फैला दिया यह उलझनों का जाल,
आप अपने को जहाँ सब ढूँढते बेहाल !

काल-सीमा-हीन सूने में रहस्यनिधान !
मूर्तिमत् कर वेदना तुमने गढ़े जो प्राण,

धूलि के कण मे उन्हे बन्दी बना अभिराम,
पूछते हो अब अपरिचित से उन्ही का नाम!

पूछना क्या दीप है आलोक का आवास?
सिन्धु को कब खोजने लहरे उडी आकाश!

धडकनो से पूछता है क्या हृदय पहचान?
क्या कभी कलिका रही मकरन्द से अनजान?

क्या पता देने घनो का वारि-बिन्दु असार?
क्या नही दृग जानते निज आँसुओ का भार?

चाह की मृदु उँगलियो ने छू हृदय के तार,
जो तुम्ही मे छेड दी मै हूँ वही झंकार!

नींद के नभ मे तुम्हारे स्वप्न-पावस-काल,
आँकता जिसको वही मै इन्द्रधनु हूँ बाल!

तृप्ति-प्याले मे तुम्ही ने साध का मधु घोल,
है जिसे छलका दिया मै वही बिन्दु अमोल!

तोड़ कर वह मुकुर जिसमें रूप करता लास,
पूछता आधार क्या प्रतिबिम्ब का आवास ?

उर्मियों में झूलता राकेश का आभास
दूर होकर क्या नहीं है इन्दु के ही पास ?

इन हमारे आँसुओं में बरसते सविलास—
जानते हो क्या नहीं किसके तरल उच्छ्वास ?

इस हमारी खोज में इस वेदना में मौन,
जानते हो खोजता है पूर्ति अपनी कौन ?

यह हमारे अन्त उपक्रम यह पराजय जीत
क्या नहीं रचता तुम्हारी साँस का संगीत ?

पूछते फिर किसलिए मेरा पता बेपीर !
हृदय की धड़कन मिली है क्या हृदय को चीर ?

किसी नक्षत्रलोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदु गात,

नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान!

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झंकार,

जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात!

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलों में पलभर झूल,
कपोलों पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँसू का फूल,

एक ही आदि अन्त की साँस—
कहे वह क्या पिछला इतिहास!

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार

देश का जिसे न निज का भान
बतावे क्या अपनी पहिचान!

सिन्धु को क्या परिचय दे देव
बिगडते बनते वीचि-विलास ?
क्षुद्र है मेरे बुद्बुद्-प्राण
तुम्ही मे सृष्टि तुम्ही मे नाश !

मुझे क्यो देते हो अभिराम !
थाह पाने का दुस्तर काम ?

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास,
चुरा लाया जो विश्व-समीर
वही पीडा की पहली सांस !

छोड क्यो देते बारम्बार,
मुझे तम से करने अभिसार ?

छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन मे शिशु के अर्थविहीन,
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जडता मे लीन,

दृगो मे छिपा अश्रु का हार,
सुभग है तेरा ही उपहार !
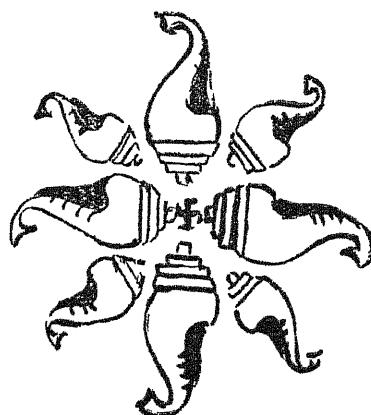
इन आँखों ने देखी न राह कहीं,
इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं,
करती मिट जाने की साध कभी,
इन प्राणों को मूक अधीर नहीं,
अलि छोड़ो न जीवन की तरणी
उस सागर में जहाँ तीर नहीं !
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ,
प्रिय से कम मादक पीर नहीं !

जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती को प्रतीति नहीं,
जो हुआ जल दीपकमय उसने
कभी पूछी निबाह की रीति नहीं,
मतवाले चकोर से सीखी कभी,
उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं
तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं !

पथ म नित स्वर्ण-पराग बिछा,
तुझे देख जो फूली समाती नही,
पलको से दलो में घुला मकरन्द,
पिलाती कभी अनखाती नही,
किरणो मे गुँथी मुक्तावलियाँ,
पहनाती रही सकुचाती नही,
अव भूल गुलाव मे पकज की,
अलि कैसे तुझे सुधि आती नही !

करने करुणा-घन छाँह वहाँ,
झुलसाता निदाघ सा दाह नहीं,
मिलती शुचि आँसुओ की सरिता,
मृगवारि का सिन्धु अथाह नही,
'हँसता अनुराग का इन्दु सदा,
छलना की कुहू का निबाह नही;
फिरना अलि भूल कहाँ भटका,
यह प्रेम के देश की राह नही !'
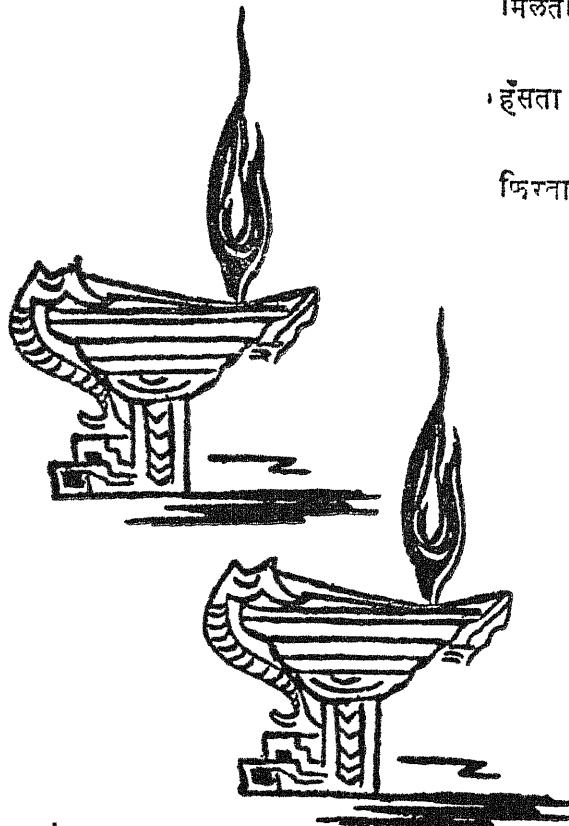
'दिया क्यो जीवन का वरदान ?

इसमें है स्मृतियो का कम्पन,
सुप्त व्यथाओ का उन्मीलन,
स्वप्नलोक की परियाँ इसमे
भूल गई मुस्कान!

इसमे है झंझा का शैशव,
अनुरजित कलियो का वैभव,
मलयपवन इसमे भर जाता
मृदु लहरो के गान!

इन्द्रधनुष सा घन-अचल मे,
तुहिन-बिन्दु सा किसलय दल मे,
करना हैं पल पल मे देखो
मिटने का अभिमान!
सिकता मे अंकित रेखा सा,
वात-विकम्पित दीपशिखा सा,
काल-कपोलो पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान!

सजनि कौन तम मे परिचित सा, सुधि सा, छाया सा, आता ?
सूने म सस्मित चितवन मे जीवन दीप जला जाता !

छू स्मृतियो के बाल जगाता,
मूक वेदनाये दुलराता,
हृत्तन्त्री मे स्वर भर जाता,

बन्द दृगो म, चूम सजल सपनो के चित्र बना जाता !

पलको मे भर नवल नेह-कन,
प्राणो मे पीडा की कसकन,
श्वासो मे आशा की कम्पन,

सजनि ! मूक बालक मन को फिर आकुल क्रन्दन सिखलाता !

घन तम मे सपने सा आकर,
अलि कुछ करुण स्वरो मे गाकर,
किसी अपरिचित देश बुलाकर,

पथ-व्यय के हित अचल मे कुछ बाँध अश्रु के कन जाता !
सजनि कौन तम मे परिचित सा सुधि सा छाया सा आता ?

कह दे माँ क्या अब देखूँ !

देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ !

देखूँ हिम-हीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाई पलकों से
झरते आँसू-कण देखूँ !

सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुख की घूँटें पीती या
ठंडी साँसों को देखूँ !

खेलूँ परागमय मधुमय
तेरी वसन्त-छाया में,
या झुलसे सन्तापों से
प्राणों का पतझर देखूँ !

मकरन्द-पगी केसर पर
जीती मधु-परियाँ ढूँढूँ,
या उर-पञ्जर में कण को
तरसे जीवन-शुक देखूँ !

कलियों की घन जाली में
छिपती देखूँ लतिकायें,
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ !

बहलाऊँ नव किसलय के—
झूले में अलि-शिशु तेरे,
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूँ !

तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ !

देखूँ विहगों का कलरव
घुलता जल की कलकल में,
निस्पन्द पड़ी वीणा से
या बिखरे मानस देखूँ !

मृदु रजत-रश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पंखों में,
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूँ !

तुझ में अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू-जल,
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ !
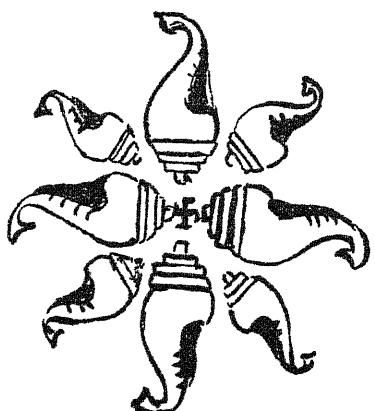
तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बाण !

कलियों के मृदु प्यालों से जो
करती मधुमद पान,
झाँक, जला देती नीड़ों में
दीपक सी मुस्कान !

लोल तरंगों के तालों पर
करती बेसुध लास,
फैलाती तम के रहस्य पर
आलिङ्गन का पाश,

ओस-धुले पथ में छिप तेरा
जब आता आह्वान,
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में
होती अन्तर्धान !

तुम अनन्त जलराशि ऊर्म्मि मैं
चंचल सी अवदात,
अनिल-निपीडित जा गिरती जो
कूलों पर अज्ञात,

हिम-शीतल अधरों से छूकर
तप्त कणों की प्यास,
बिखराती मंजुल मोती से
बुद्बुद् में उल्लास,

देख तुम्हे निस्तब्ध निशा मे
करते अनुसन्धान,
श्रान्त तुम्ही मे सो जाते जा
जिसके बालक प्राण !

तुम परिचित ऋतुराज मूक मे
मधुश्री कोमलगात,
अभिमन्त्रित कर जिसे सुलाती
आ तुषार की रात,

पीत पल्लवो मे सुन तेरी
पदध्वनि उठती जाग,
फूट फूट पडता किसलय मिस
चिरसचित अनुराग,

मुखरित कर देता मानस-पिक
तेरा चितवन-प्रात,
छू मादक निश्वास पुलक—
उठते रोओ से पात !

फूलो मे मधु से लिखती जो
मधुघडियो के नाम,
भर देती प्रभात का अचल
सौरभ से बिन दाम,

'मधु जाना अलि' जब कह जाती
आ सन्तप्त बयार,
मिल तुझमे उड जाता जिसका
जागृति का ससार !

स्वरलहरी मे मधुर स्वप्न की
तुम निद्रा के तार,
जिसमे होता इस जीवन का
उपक्रम उपसहार,

पलकों मे पलकों पर उड़कर
तितली सी अम्लान,
निद्रित जग पर बुन देती जो
लय का एक वितान,

मानस-दोलों में सोती शिशु
इच्छायें अनजान,
उन्हें उड़ा देती नभ में दे
द्रुत पंखों का दान !

सुखदुख की मरकत-प्याली से
मधु-अतीत कर पान
मादकता की आभा से छा
लेती तम के प्राण,

जिसकी साँसें छू हो जाता
छायाजग वपुमान,
शून्य निशा में भटके फिरते
सुधि के मधुर विहान,

इन्द्रधनुष के रङ्गों में भर
धुँधले चित्र अपार,
देती रहती चिर रहस्यमय
भावों को आकार !

जब अपना सङ्गीत सुलाते
थक वीणा के तार,
घुल जाता उसका प्रभात के
कुहरे सा संसार !

तुम असीम विस्तार ज्योति के
मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखारूपहीनता
है जिसमें साकार !

फूलो पर नीरव रजनी के
शून्य पलो के भार,
पानी करते रहते जिसके
मोती के उपहार,

जब समीर-यानो पर उडते
मेघो के लघु बाल,
उनके पथ पर जो बुन देता
मृदु आभा के जाल,

जो रहता तम के मानस मे
ज्यो पीडा का दाग,
आलोकित करता दीपक सा
अन्तर्हित अनुराग !,

जब प्रभात मे मिट जाता
छाया का कारागार,
मिल दिन मे असीम हो जाता
जिसका लघु आकार !

मै तुमसे हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश,
मै तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यो
घन से तडित्-विलास,

मुझे बाँधने आते हो लघु
सीमा मे चुपचाप,
कर पाओगे भिन्न कभी क्या
ज्वाला से उत्ताप ?
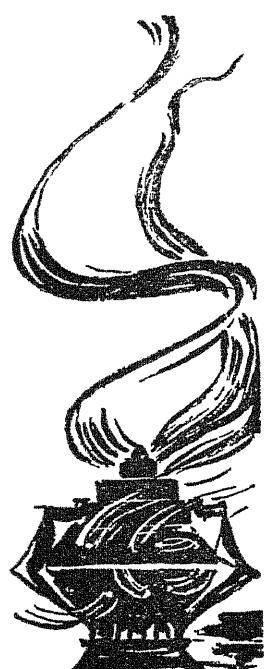
विहग-शावक से जिस दिन मूक,
पड़े थे स्वप्न-नीड़ में प्राण,
अपरिचित थी विस्मृति की रात,
नहीं देखा था स्वर्णविहान !

रश्मि बन तुम आये चुपचाप,
सिखाने अपने मधुमय गान,
अचानक दी वे पलकें खोल,
हृदय में वेध व्यथा का बाण—
हुए फिर पल में अन्तर्धान !

रँग रही थी सपनों के चित्र,
हृदय-कलिका मधु में सुकुमार,
अनिल बन सौ सौ बार दुलार,
तुम्हीं ने खुलवाये उर-द्वार,

—और फिर रहे न एक निमेष,
लुटा चुपके से सौरभ-भार,
रह गई पथ में बिछ कर दीन,
दृगों की अश्रुभरी मनुहार—
मूक प्राणों की विफल पुकार !

विश्व-वीणा में कब से मूक
पड़ा था मेरा जीवन-तार,
न मुखरित कर पाई झकझोर—
थक गई सौ सौ मलयबयार !

तुम्हीं रचते अभिनव सङ्गीत,
कभी मेरे गायक इस पार,
तुम्हीं ने कर निर्मम आघात
छेड़ दी यह बेसुर झंकार—
और उलझा डाले सब तार !
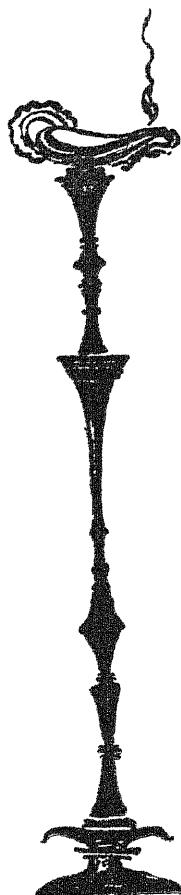
न थे जब परिवर्तन दिनरात,
नहीं आलोक-तिमिर थे ज्ञात,
व्याप्त क्या सूने में सब ओर,
एक कम्पन थी एक हिलोर ?

न जिसमें स्पन्दन था न विकार,
न जिसका आदि न उपसंहार,
सृष्टि के आदि आदि में मौन,
अकेला सोता था वह कौन ?

स्वर्ण-लूता सी कब सुकुमार,
हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरङ्गे तार,
बुन लिया अपना ही संसार !

बदलता इन्द्रधनुष सा रङ्ग,
सदा वह रहा नियति के सङ्ग,
नहीं उसको विराम विश्राम,
एक बनने मिटने का काम !

सिन्धु की जैसे तप्त उसाँस,
दिखा नभ में लहरों सा लास,
घात प्रतिघातों की खा चोट,
अश्रु बन फिर आ जाती लौट !

बुलबुले मृदु उर के से भाव,
रश्मियों से कर कर अपनाव,
यथा हो जाते जलमयप्राण—
उसी में आदि वही अवसान !

धरा की जड़ता उर्वर बन,
प्रकट करती अपार जीवन,
उसी में मिलकर वे द्रुततर,
सींचते क्या नवीन अंकुर?

मृत्यु का प्रस्तर-सा उर चीर,
प्रवाहित होता जीवन-नीर,
चेतना से जड़ का बन्धन,
यही संसृति की हृत्कम्पन!

विविध रङ्गों के मुकुर सँवार,
जड़ा जिसने यह कारागार,
बना क्या बन्दी वही अपार,
अखिल प्रतिबिम्बों का आधार?

वक्ष पर जिसके जल उडुगण,
बुझा देते असंख्य जीवन,
कनक औ' नीलम-यानों पर,
दौड़ते जिस पर निशि-वासर,

पिघल गिरि से विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल,
तड़ित् की ज्वाला घन-गर्जन
जगा पाते न एक कम्पन,

उसी नभ सा क्या वह अविकार—
और परिवर्तन का आधार?
पुलक से उठ जिसमें सुकुमार,
लीन होते असंख्य संसार!
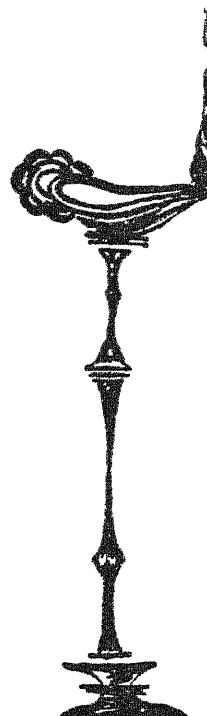
कहीं से, आई हूँ कुछ भूल !

कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लेता
विस्मृति-सरिता के कूल ?

किसी अश्रुमय घन का हूँ कन,
टूटी स्वर-लहरी की कम्पन,
या ठुकराया गिरा धूलि में
हूँ मैं नभ का फूल !

दुख का युग हूँ या सुख का पल,
करुणा का घन या मरु निर्जल,
जीवन क्या है मिला कहाँ
सुधि भूली आज समूल !

प्याले में मधु है या आसव,
बेहोशी है या जागृति नव,
बिन जाने पीना पड़ता है
ऐसा विधि प्रतिकूल !

अलि कैसे उनको पाऊँ ?

वे आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,

इन पलकों के बन्धन मे,
मै बांध बांध पछताऊँ !

मेघो मे विद्युत् सी छबि,
उनकी बनकर मिट जाती,

आँखो की चित्रपटी मे,
जिसमे मै आँक न पाऊँ !

वे आभा बन खो जाते,
शशिकिरणो की उलझन में,

जिसमे उनको कण कण मे,
ढूँढ़ पहिचान न पाऊँ !

मोते, सागर की धड़कन—
बन, लहरों की थपकी से,

अपनी यह करुण कहानी,
जिसमें उनको न सुनाऊँ !

वे तारक-बालाओं की,
अपलक चितवन बन आते,

जिसमें उनकी छाया भी,
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ !

वे चुपके से मानस में,
आ छिपते उच्छ्वासें बन,

जिसमें उनको साँसों में,
देखूँ पर रोक न पाऊँ !

वे स्मृति बनकर मानस में,
खटका करते हैं निशिदिन,

उनकी इस निष्ठुरता को,
जिसमें मैं भूल न जाऊँ !

अश्रु न सीमित कणो में बाँध ली,
क्या नही घन सी तिमिर मी वेदना ?
क्षुद्र तारो से पृथक् ससार मे,
क्या कही अस्तित्व है झकार का ?

यह क्षितिज को चूमनेवाला जलधि,
क्या नही नादान लहरो से बना ?
क्या नही लघु वारि-बूँदो मे छिपी,
वारिदो की गहनता गम्भीरता ?

विश्व मे वह कौन सीमाहीन है ?
हो न जिसका खोज सीमा मे मिला !
क्यो रहोगे क्षुद्र प्राणो म नही,
क्या तुम्ही सर्वेश एक महान हो ?

छिपाये थी कुहरे सी नीद,
काल का सीमा का विस्तार,
एकता मे अपनी अनजान,
समाया था सारा ससार !

मुझे उसकी है धुँधली याद,
बैठ जिस सूनेपन के कूल,
मुझे तुमने दी जीवनबीन,
प्रेमशतदल का मैने फूल !

उसी का मधु से सिक्त पराग,
और पहला वह सौरभ-भार,
तुम्हारे छूते ही चुपचाप,
हो गया था जग मे साकार !

—और तारो पर उँगली फेर,
छेड दी मैने जो झकार,
विश्व-प्रतिमा मे उसने देव !
कर दिया जीवन का सचार !

हो गया मधु से सिन्धु अगाध,
रेणु से वसुधा का अवतार,
हुआ सौरभ से नभ वपुमान,
और कम्पन से बही बयार,

उसी म घडियाँ पल अविराम,
पुलक से पाने लगे विकास,
दिवस रजनी तम और प्रकाश,
बन गए उसके श्वासोच्छ्वास !

उसे तुमने सिखलाया हास,
पिन्हाये मैंने आँसू-हार,
दिया तुमने सुख का साम्राज्य,
वेदना का मैं ने अधिकार!

वही कौतुक—रहस्य का खेल,
बन गया है असीम अज्ञात,
हो गई उसकी स्पन्दन एक,
मुझे अब चकवी की चिर रात!

तुम्हारी चिर परिचित मुस्कान,
भ्रान्त से कर जाती लघु प्राण,
तुम्हें प्रतिपल कण कण में देख,
नहीं अब पाते हैं पहिचान!

कर रहा है जीवन सुकुमार,
उलझनों का निष्फल व्यापार,
पहेली की करते हैं सृष्टि,
आज प्रतिपल साँसों के तार!

विरह का तम हो गया अपार,
मुझे अब वह आदान प्रदान,
बन गया है देखो अभिशाप,
जिसे तुम कहते थे वरदान!

तेरी आभा का कण नभ को,
देता अगणित दीपक दान,
दिन को कनकराशि पहनाता,
विधु को चाँदी सा परिधान,

करुणा का लघु बिन्दु युगों से,
भरता छलकाता नव घन,
समा न पाता जग के छोटे,
प्याले में उसका जीवन !

तेरी महिमा की छाया-छबि,
छू होता वारीश अपार,
नील गगन पा लेता घन सा,
तम सा अन्तहीन विस्तार,

सुषमा का कण एक खिलाता,
राशि राशि फूलों के वन,
शत शत झञ्झावात प्रलय-
बनता पल में भ्रू-सञ्चालन !

सच है कण का पार न पाया,
बन बिगडे असंख्य संसार,
पर न समझना देव हमारी—
लघुता है जीवन की हार !

लघु प्राणों के कोने में,
खोई असीम पीडा देखो,
आओ हे निस्सीम ! आज
इस रजकण की महिमा देखो !

जिसको अनुराग सा दान दिया,
    उससे कण माँग लजाता नहीं,
अपनापन भूल समाधि लगा,
    यह पी का विहाग भुलाता नहीं,
नभ देख पयोधर श्याम घिरा,
    मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं?
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा,
    जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं?

उसको अपना करुणा से भरा,
    उर-सागर क्यों दिखलाता नहीं?
संयोग वियोग की घाटियों में,
    नव नेह में बाँध झुलाता नहीं!
सन्ताप के संचित आँसुओं से,
    नहला के उसे तू धुलाता नहीं,
अपने तम-श्यामल पाहुन को,
    पुतली की निशा में सुलाता नहीं!

कभी देख पतङ्ग को जो दुख से
    निज, दीपशिखा को रुलाता नहीं,
मिल ले उस मीन से जो जल की,
    निठुराई विलाप में गाता नहीं,
कुछ सीख चकोर से जो चुगता,
    अङ्गार, किसी को सुनाता नहीं,
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया,
    यह पी पी घनों को सुहाता नहीं!

विश्व-जीवन के उपसंहार !

तू जीवन मे छिपा वेणु मे ज्यो ज्वाला का वास,
तुझ मे मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास,

पतझर बन जग मे कर जाता
नव वसन्त सचार !

मधु मे भीने फूल प्राण मे भर मदिरा सी चाह,
देख रहे अविराम तुम्हारे हिम-अधरो की राह,

मुरझाने के मिस देते तुम
नव शैशव उपहार

कलियो में सुरभित कर अपने मृदु आँसू अवदात,
तेरे मिलन-पथ मे गिन गिन पग रखती है रात,

नवछबि पाने हो जाती मिट
तुझ में एकाकार !

क्षीण शिखा से नभ मे लिख बीती घडियों के नाम,
तेरे पथ मे स्वर्णरेणु फैलाना दीप ललाम,
उज्ज्वलतम होना तुझ से ले
मिटने का अधिकार !

घुलनेवाले मेघ अमर जिनकी कण कण मे श्याम,
जो स्मृति में है अमिट वही मिटनेवाला मधुमास—
तुझ बिन हो जाना जीवन का
सारा काव्य असार !

इस अनन्त पथ मे संसृति की सांसे करती लास,
जाती है असीम होने मिट कर असीम के पास,
कौन हमे पहुँचाता तुझ बिन
अन्तहीन के पार ?

चिर यौवन पा सुषमा होती प्रतिमा सी अम्लान
चाह चाह थक थक कर हो जाते प्रस्तर मे प्राण,
सपना होता विश्व हासमय
आँसूमय सुकुमार !
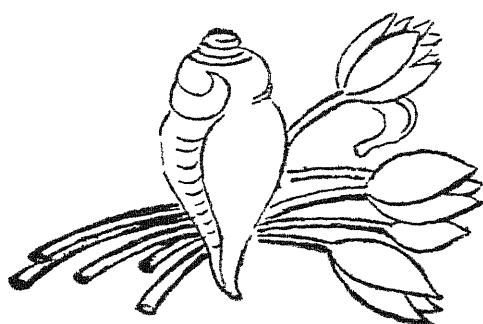
प्राणो के अन्तिम पाहुन !

चाँदनी-धुला, अजन मा, विद्युत्-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर-पखो से उड जो नभ मे घिर आता,

वह वारिद तम आना बन !

ज्यो श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलको मे धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती,

त्यो करना बेसुध जीवन !

अज्ञातलोक से छिप छिप ज्यो उतर रश्मियाँ आती,
मधु पीकर प्याम बुझाने फूलो के उर खुलवाती,

छिप आना तुम छायातन !

हिम से जड नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवन-दीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,

हिम होने देना यह तन !

कितनी करुणाओं का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली में छान भरी है मैंने जीवन की प्याली

पी कर लेना शीतल मन !

कितने युग बीत गए इन निधियों का करते संचय,
तुम थोड़े से आँसू दे इन सबको कर लेना क्रय

अब हो व्यापार-विसर्जन !

है अन्तहीन लय यह जग पल पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी में धोना अपने श्रम के कण

मधु से भरना सूनापन !

पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
वे जीवन के क्षण क्षण में भरते असीम कोलाहल

तुम बन जाना नीरव क्षण !

तेरी छाया में दिव को हँसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ हैं देख रहे अगणित दृग,

साँसों में घड़ियाँ गिन गिन !

नींद में सपना बन अज्ञात !
गुदगुदा जाते हो जब प्राण
ज्ञात होता हँसने का मर्म
तभी तो पाती हूँ यह जान,

प्रथम छू कर किरणों की छाँह
मुस्कराती कलियाँ क्यों प्रात,
समीरण का छूकर चल छोर
लोटते क्यों हँस हँस कर पात !

प्रथम जब भर आतीं चुपचाप
मोतियों से आँखें नादान,
आँकती तब आँसू का मोल
तभी तो आ जाता यह ध्यान,

घुमड़ घिर क्यों रोते नव मेघ
रात बरसा जाती क्यों ओस,
पिघल क्यों हिम का उर अवदात
भरा करता सरिता के कोष !

मधुर अपने स्पन्दन का राग
मुझे प्रिय जब पड़ता पहिचान !
ढूँढती तब जग में संगीत
प्रथम होता उर में यह भान,

वीचियों पर गा करुण विहाग
सुनाता किसको पारावार
पथिक सा भटका फिरता वात
लिए क्यों स्वर-लहरी का भार !

हृदय में खिल कलिका सी चाह
दृगों को जब देती मधुदान,
छलक उठता पुलकों से गात
जान पाता तब मन अनजान

गगन में हँसता देख मयंक
उमड़ती क्यों जलराशि अपार,
पिघल चलते विधुमणि के प्राण
रश्मियाँ छूते ही सुकुमार !

देख वारिद की धूमिल छाँह
शिखी-शावक क्यों होता भ्रान्त,
शलभ-कुल नित ज्वाला से खेल
नहीं फिर भी क्यों होता श्रान्त !
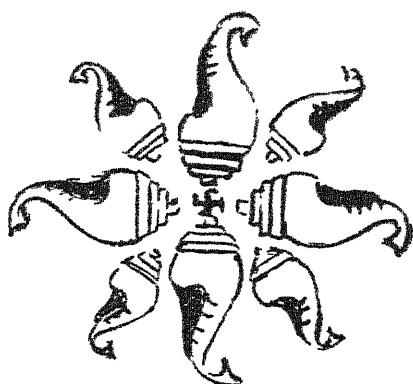
चुका पायेगा कैसे बोल !
मेरा निर्धन सा जीवन तेरे वैभव का मोल !

अचल मे मधु भर जो लाती,
मुस्कानो मे अश्रु बसाती,
बिन समझे जग पर लुट जाती,
उन कलियो को कैसे ले यह फीकी स्मित बेमोल !

लक्ष्यहीन सा जीवन पाते,
घुल औरो की प्यास बुझाते,
अणुमय हो जगमय हो जाते,
जो वारिद उनमे मत मेरा लघु आँसू-कन घोल !

भिक्षुक बन सौरभ ले आना,
कोने कोने में पहुँचाना
सूने में संगीत बहाना,
जो समीर उससे मत मेरी निष्फल साँस तोल!

—

तो अलसाया विश्व सुलाते
बुन मोती का जाल उढ़ाते,
पलक पर पलकें न लगाते,
क्यों मेरा पहरा देने के तारक आँखें खोल?

पाषाणों की शय्या पाता,
उस पर गीले गान बिछाता,
नित गाता, गाता ही जाता,
जो निर्झर उसको देगा क्या मेरा जीवन लोल?

बीते वसन्त की चिर समाधि !

जग-शतदल से नव खेल, खेल
कुछ कह रहस्य की करुण बात,
उड गई अश्रु सा तुझे डाल
किसके जीवन से मिलन-रात ?

रहता जिसका अम्लान रङ्ग--
तू मोती है या अश्रु-हार !

किस हृदय-कुज मे मन्द मन्द
तू बहती थी बन नेह-धार ?
कर गई शीत की निठुर रात
छू कब तेरा जीवन तुषार ?

पाती न जगा क्यो मधु-बतास
हे हिम के चिर निस्पन्द भार ?

जिस अमर काल का पथ अनन्त
बोते रहते आँसू नवीन,
क्या गया वही पद-चिह्न छोड
छिपकर कोई दुख-पथिक दीन ?

जिसकी तुझमे है अमिट रेख
अस्थिर जीवन के करुण काव्य !

कब किसका सुख-सागर अथाह
हो गया विरह से व्यथित प्राण ?
तू उडी जहाँ से बन उसाँस
फिर हुई मेघ सी मूर्त्तिमान !

कर गया तुझे पाषाण कौन
दे चिर जीवन का निठुर शाप ?

किसने जाना मधुदिवस जान
ली छीन छाँह उसकी अधीर ?
रच दी उसको यह धवल सौध
ले साधों की रज नयन-नीर,

जिसका न अन्त जिसमें न प्राण
है सुधि के वन्दीगृह अजान !

वे दृग जिनके नव नेहदीप
बुझकर न हुए निष्प्रभ मलीन,
वह उर जिसका अनुराग-रत्न
मुँदकर न हुआ स्पृहीन दीन,

वह सुषमा का चिर नीड़ गान
कैसे न रख पाती सँभार !

प्रिय के मानस में हो विलीन
फिर धड़क उठे जो मूक प्राण,
जिसने स्मृतियों से हो सजीव
देखा नवजीवन का विहान,

वह जिसको पतझर था वसन्त
क्या तेरा पाहुन है समाधि ?

दिन बरसा अपनी स्वर्णरेणु
मैली करता जिसकी न सेज,
चौका पाती जिसके न स्वप्न
निशि मोती के उपहार भेज,

क्या उसकी है निद्रा अनन्त
जिसकी प्रहरी न मृदुराग?

सजनि तेरे दृग बाल !
चकित से विस्मित से दृग बाल——

आज खोये से आते लौट,
कहाँ अपनी चचलता हार ?
झुकी जाती पल्के सुकुमार,
कौन से नव रहस्य के भार ?

सरल तेरा मृदु हास !
अकारण वह शैशव का हास——

बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाजभीनी सी मृदु मुस्कान !
तडित् सी जो अधरो की ओट,
झाँक हो जाती अन्तर्धान !

सजनि वे पद सुकुमार !
तरङ्गो से द्रुत पद सुकुमार——
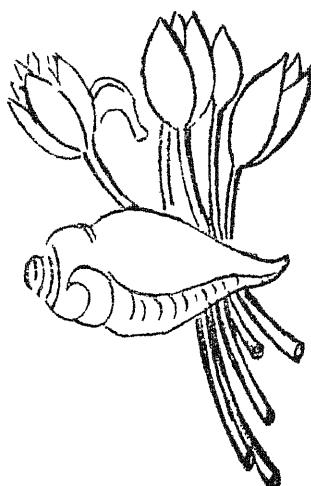
सीखते क्यो चचल गति भूल,
भरे मेघो की धीमी चाल ?
तृषित कन कन को क्यो अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल ?

मुकुर से तेरे प्राण,
विश्व की निधि से तेरे प्राण——

छिपाये से फिरते क्यो आज,
किसी मधुमय पीडा का न्यास ?
सजल चितवन मे क्यो है हास,
अधर मे क्यो सस्मित निश्वास ?

अश्रु-सिक्त रज से किसने
निर्मित कर मोती सी प्यारी,
इन्द्रधनुष के रङ्गों से
चित्रित कर मुझको दे डाली !

मैंने मधुर वेदनाओं की
उसमें जो मदिरा ढाली,
फूटी सी पड़ती है उसकी
फेनिल, विद्रुम सी लाली !

सुख-दुख की बुद्बुद सी लड़ियाँ
बन बन उसमें मिट जाती,
बूँद बूँद होकर भरती वह
भर कर छलक छलक जाती !

इस आशा से मैं उसमें
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों—
को छू वह होगी अनमोल !

तृतीय याम

नीरजा

रचना काल
१९३१-१९३४

प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर!

दुख से आविल सुख से पंकिल,
बुद्बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग युग से अधीर!

जीवन-पथ का दुर्गमतम तल
अपनी गति से कर सजल सरल
शीतल करता युग तृषित तीर!

इसमें उपजा यह नीरज सित
कोमल कोमल लज्जित मीलित
सौरभ सी लेकर मधुर पीर!

इ[illegible] चिह्न शेष,
इ[illegible] सलिल-लेश,
इसको न जगाती मधुप-भीर!

तेरे करुणा-कण से विलसित,
हो तेरी चितवन से विकसित
छू तेरी श्वासों का समीर

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी!

तारकमय नव वेणीबन्धन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी!
पुलकती आ वसन्त-रजनी!

मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी!
विहँसती आ वसन्त-रजनी!

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि
मलयानिल का चल दुकूल अलि!
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी!
सकुचती आ वसन्त-रजनी!

सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पडते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई
पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसन्त-रजनी!

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर?

सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुंजों में,
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधु-कण,
हरसिंगार झरते हैं झर झर!
आज नयन आते क्यों भर भर?

पिक की मधुमय वंशी बोली
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल बरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर,
आँज रही निशि दृग-इन्दीवर!
आज नयन आते क्यों भर भर?

आँसू बन बन तारक आते,
सुमन हृदय में सेज बिछाते,
कम्पित वानीरों के बन भी,
रह रह करुण विहाग सुनाते
निद्रा उन्मन कर कर विचरण
लौट रही सपने संचित कर!
आज नयन आते क्यों भर भर?

जीवन, जल-कण से निर्मित सा
चाह-इन्द्रधनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग,
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा
तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन!
मेरी पलकों में पग धर धर!
आज नयन आते क्यों भर भर?

तुम्हें बाँध पाती सपने में!
तो चिरजीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में!

पावस-घन सी उमड़ बिखरती,
शरद-निशा सी नीरव घिरती,
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में!

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन
हँस जर्जर जीवन अपने में!

सब की सीमा बन सागर सी,
हो असीम आलोक-लहर सी,
तारोमय आकाश छिपा
रखती चंचल तारक अपने में!

शाप मुझे बन जाता वर सा,
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग एक
लघु प्राणों के स्पन्दन अपने में!

साँसें कहती अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय! मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ सौ लघुतम बन्धन अपने में!'
तुम्हें बाँध पाती सपने में!

आज क्यों तेरी वीणा मौन?

शिथिल शिथिल तन थकित हुए कर
स्पन्दन भी भूला जाता उर,

मधुर कसक सा आज हृदय में
आन समाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन?

झुकती आती पलकें निश्चल
चित्रित निद्रित से तारक चल,

सोता पारावार दृगों में
भर भर लाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन?

बाहर घन-तम, भीतर दुख-तम
नभ में विद्युत तुझ में प्रियतम,

जीवन पावस-रात बनाने
सुधि बन छाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन?

शृंगार कर ले री सजनि !

नव क्षीरनिधि की उर्म्मियों से
रजत झीने मेघ सित,
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित,
सखि ! सिहर उठती रश्मियों का
पहिन अवगुण्ठन अवनि !

हिम-स्नात कलियों पर जलाये
जुगनुओं ने दीप से,
ले मधु-पराग समीर ने
वनपथ दिये हैं लीप से,
गाती कमल के कक्ष में
मधु-गीत मतवाली अलिनि !

तू स्वप्न-सुमनों से सजा तन
विरह का उपहार ले,
अगणित युगों की प्यास का
अब नयन अंजन सार ले !
अलि ! मिलन-गीत बने मनोरम
नूपुरों की मदिर ध्वनि !

इस पुलिन के अणु आज हैं
भूली हुई पहचान से,
आते चले जाते निमिष
मनुहार से, वरदान से,
अज्ञात पथ, है दूर प्रिय चल
भीगती मधु की रजनि

कौन तुम मेरे हृदय में?

कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित?

स्वर्णस्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में
कौन तुम मेरे हृदय में?

अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरन्तर?
चूमने पदचिह्न किसके
लौटते यह श्वास फिर फिर?

कौन बन्दी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

एक करुण अभाव में चिर—
तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा
निर्वाण के वरदान शत शत,

पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

गूँजता उर में न जाने
दूर के संगीत सा क्या!
आज खो निज को मुझे
खोया मिला, विपरीत सा क्या!
क्या नहा आई विरह-निशि
मिलन-मधु-दिन के उदय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

तिमिर-पारावार में
आलोक-प्रतिमा है अकम्पित,
आज ज्वाला से बरसता
क्यों मधुर घनसार सुरभित?
सुन रही हूँ एक ही
झंकार जीवन में प्रलय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

मूक सुख दुख कर रहे
मेरा नया शृंगार सा क्या?
झूम गर्वित स्वर्ग देता—
नत धरा को प्यार सा क्या?
आज पुलकित सृष्टि क्या
करने चली अभिसार लय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

ओ पागल संसार!
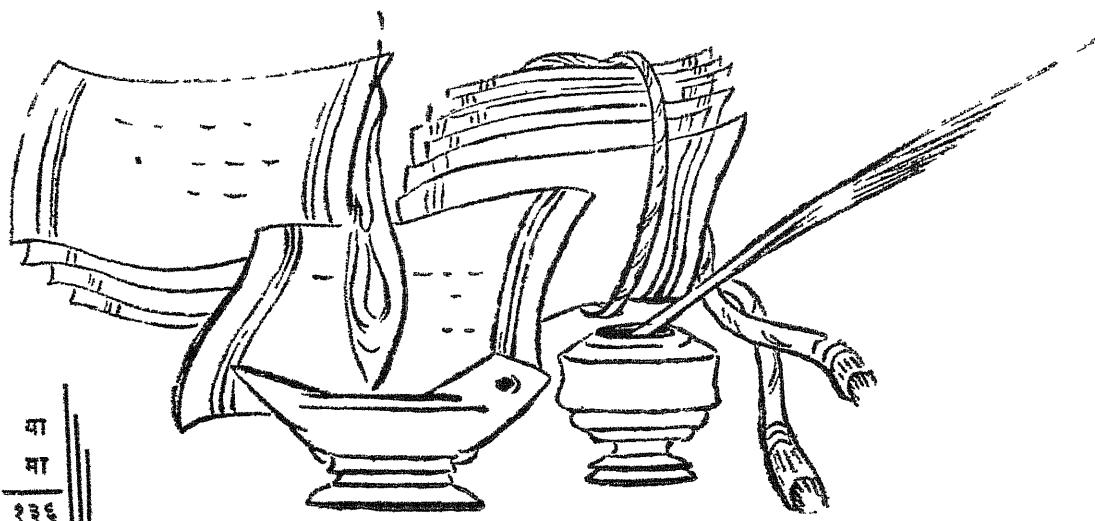
माँग न तू हे शीतल तममय!
जलने का उपहार!

करता दीपशिखा का चुम्बन,
पल में ज्वाला का उन्मीलन,
छूते ही करना होगा
जल मिटने का व्यापार!
ओ पागल संसार!

दीपक जल देता प्रकाश भर,
दीपक को छू जल जाता घर,
जलने दे एकाकी मन आ
हो जावेगा क्षार!
ओ पागल संसार!

जलना ही प्रकाश उसमें सुख,
बुझना ही तम है तम में दुख,
तुझमें चिर दुख, मुझमें चिर सुख
कैसे होगा प्यार!
ओ पागल संसार!

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल,
झुलस कहाँ हो पाया उज्ज्वल!
कब कर पाया वह लघु तन से
नव आलोक-प्रसार!
ओ पागल संसार!

अपना जीवन-दीप मृदुलतर,
वर्ती कर निज स्नेह-सिक्त उर,
फिर जो जल पावे हँस हँस कर
हो आभा साकार!
ओ पागल संसार!
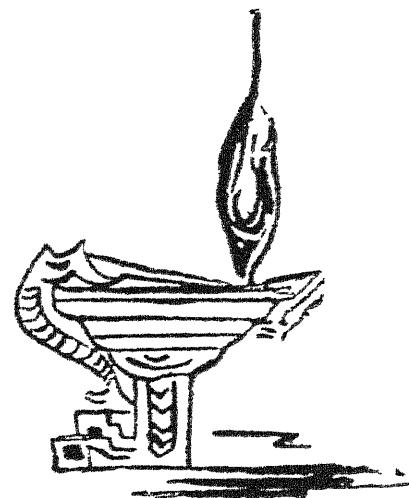
'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!'

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात!
जीवन विरह का जलजात!

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल कण से बने घन सा क्षणिक् मृदु गात!
जीवन विरह का जलजात!

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात!
जीवन विरह का जलजात!

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात!
जीवन विरह का जलजात!

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,'
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात!
जीवन विरह का जलजात!

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ!

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक हो कर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,

दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ!

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में

नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ!

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !

नभगङ्गा की रजतधार मे,
धो आई क्या इन्हे रात ?
कम्पित है तेरे सजल अङ्ग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात !
भीगी अलको के छोरो से
चूती बूंदें कर विविध लास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

सौरभभीना झीना गीला
लिपटा मृदु अजन सा दुकूल,
चल अचल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल,
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वक-पाँतों का अरविन्द-हार,

तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जाती मलयज बयार,

केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल,

झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल,

दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
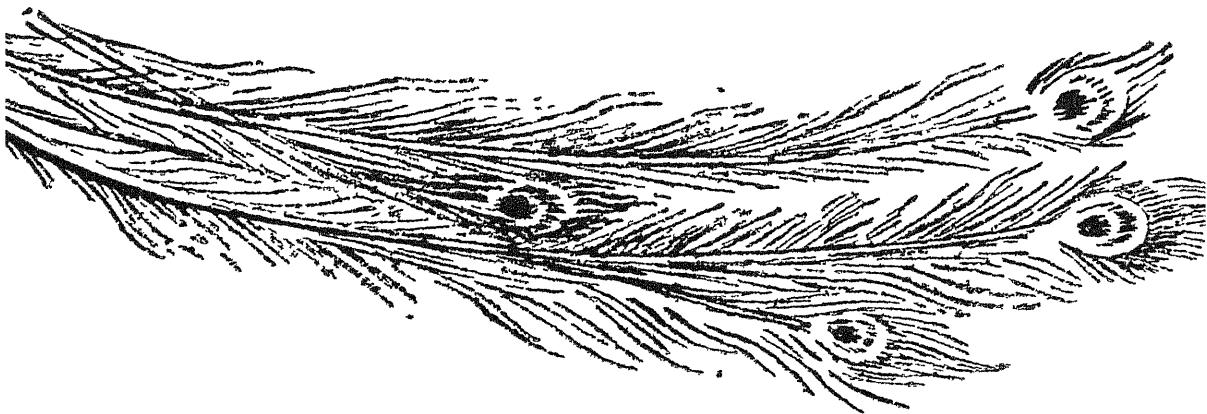
तुम मुझ मे प्रिय ! फिर परिचय क्या !

तारक में छवि प्राणो मे स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर मे पुलको की संसृति,

भर लाई हूँ तेरी चंचल

और करूँ जग में संचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,

खेल खेल थक थक सोने दो

मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला,

फिर पूछूँ क्या मेरे साकी!
देते हो मधुमय विषमय क्या?

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,

मुझ में नित बनते मिटते प्रिय!
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,

भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय! मेरी अब हार विजय क्या?

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-सङ्गम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय!
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या!

बताता जा रे अभिमानी !

कण कण उर्वर करते लोचन,
स्पन्दन भर देता सूनापन,
जग का धन मेरा दुख निर्धन,
तेरे वैभव की भिक्षुक या
कहलाऊँ रानी !
बताता जा रे अभिमानी !

दीपक सा जलता अन्तस्तल,
सचित कर आँसू के बादल,
लिपटा है इससे प्रलयानिल,
क्या यह दीप जलेगा तुझसे
भर हिम का पानी ?
बताता जा रे अभिमानी !

चाहा था तुझ मे मिटना भर,
दे डाला बनना मिट मिट कर,
यह अभिशाप दिया है या वर,
पहली मिलन-कथा हूँ या मैं
चिर-विरह कहानी !
बताता जा रे अभिमानी !

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण,
विश्व-शलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल' !
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ में देख असंख्यक
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत् ले घिरता है बादल !
विहँस विहँस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अङ्ग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयङ्गम,
वसुधा के जड अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल !
बिखर बिखर मेरे दीपक जल !

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर,
मैं अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल!
सहज सहज मेरे दीपक जल!

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन,
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझ में भरती हूँ आँसू-जल!
सजल सजल मेरे दीपक जल!

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल!
सरल सरल मेरे दीपक जल!

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल!

मदिर मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

मुखर पिक हौले बोल!
हठीले हौले हौले बोल!

जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे 'और',
चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे मौर,
समीरण मत्त उठेगा डोल!
हठीले हौले हौले बोल!

मर्मर की वंशी में गूँजेगा मधुऋतु का प्यार,
झर जावेगा कम्पित तृण से लघु सपना सुकुमार
एक लघु आँसू बन बेमोल!
हठीले हौले हौले बोल!

'आता कौन' नीड़ तज पूछेगा विहगों का रोर
दिग्वधुओं के घन-घूँघट के चंचल होंगे छोर
पुलक से होंगे सजल कपोल!
हठीले हौले हौले बोल!

प्रिय मेरा निशीथ-नीरवता में आता चुपचाप,
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पदचाप,
सुभग! यह पल घड़ियाँ अनमोल!
हठीले हौले हौले बोल!

वह सपना बन बन आता जागृति में जाता लौट,
मेरे श्रवण आज बैठे हैं इन पलकों की ओट,
व्यर्थ मत कानों में मधु घोल!
हठीले हौले हौले बोल!

भर पावे तो स्वर-लहरी में भर वह करुण हिलोर,
मेरा उर तज वह छिपने का ठौर न ढूँढे भोर
उसे बाँधूँ फिर पलक खोल!
हठीले हौले हौले बोल!

पथ देख बिता दी रैन
मै प्रिय पहचानी नही !

तम ने धोया नभ-पथ
सुवासित हिमजल से,
सूने आँगन मे दीप
जला दिए झिलमिल से,
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नही !
मै प्रिय पहचानी नही !

धर कनक-थाल म मघ
सुनहला पाटल सा,
कर बालारुण का कलश
विहग-रव मगल सा,
आया प्रिय-पथ से प्रात—
सुनाई कहानी नही !
मे प्रिय पहचानी नही !

नव इन्द्रधनुष सा चीर
महावर अंजन ले,
अलि-गुंजित मीलित पंकज—
—नूपुर रुनझुन ले,
फिर आई मनाने साँझ
मैं बेसुध मानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

इन श्वासों का इतिहास
आँकते युग बीते,
रोमों में भर भर पुलक
लौटते पल रीते,
यह ढुलक रही है याद
नयन से पानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

अलि कुहरा सा नभ, विश्व
मिटे बुद्बुद-जल सा
यह दुख का राज्य अनन्त
रहेगा निश्चल सा,
हूँ प्रिय की अमर सुहागिनि
पथ की निशानी नहीं!
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

मेरे हृमते अवर नही जग—
  की आँसू—लडियाँ देखो !
    मेरे गीले पलक छओ मत
      मुर्झाई कलियाँ देखो !

हूँस देता नव इन्द्रधनुष की—
      स्मित मे घन मिटता मिटता,
रँग जाता है विश्व राग से
      निष्फल दिन ढलना ढलता,
कर जाता ससार सुरभिमय
      एक सुमन झरता झरता,
भर जाता आलोक तिमिर में
      लघु दीपक बुझता बुझता,

मिटनेवालो की हे निष्ठुर !
  बेसुध रँगरलियाँ देखो,
    मेरे गीले पलक छुओ मत
      मुर्झाई कलियाँ देखो,

गल जाता लघु बीज असख्यक
      नश्वर बीज बनाने को,
तजता पल्लव वृन्त पतन के
      हेतु नये विकसाने को,
मिटता लघु पल प्रिय देखो
      कितने युग कल्प मिटाने को,
भूल गया जग भूल विपुल
      भूलोमय सृष्टि रचाने को !

मैं बन्धन आज नहीं प्रिय
  संसृति की कड़ियाँ देखो !
    मेरे गीले पलक छुओ मत
      मुर्झाई कलियाँ देखो !

श्वासें कहतीं 'आना प्रिय'
            निश्वास बताते 'वह जाना'
आँखों ने समझा अनजाना
            उर कहता चिर यह नाता,
सुधि से सुन 'वह स्वप्न सजीला
            क्षण क्षण नूतन बन आता',
दुख उलझन में राह न पाता
            सुख दृग-जल में बह जाता

मुझ में हो तो आज तुम्हीं 'मैं'
  बन दुख की घडियाँ देखो !
    मेरे गीले पलक छुओ मत
      बिखरी पखुरियाँ देखो

इस जादूगरनी वीणा पर
गा लेने दो क्षण भर गायक !

पल भर ही गाया चातक ने
रोम रोम मे प्यास प्यास भर ,
काँप उठा आकुल सा अग जग
सिहर गया तारोमय अम्बर,

भर आया घन का उर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

क्षण भर ही गाया फूलों ने
दृग मे जल अधरो मे स्मित धर,
लघु उर के अनन्त सौरभ से
कर डाला यह पथ नन्दन चिर,

पाया चिर जीवन झर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

एक निमिष गाया दीपक ने
ज्वाला का हँस आलिङ्गन कर,
उस लघु पल से गर्वित है तू
लघु रज-कण आभा का सागर,

दिव उस पर न्योछावर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

एक घडी गा लूँ प्रिय मै भी
मधुर वेदना से भर अन्तर,
दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,
उपल बने पुलकित से निर्झर,

मरु हो जावे उर्वर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!

जलधि-मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग-व्योम में

सजल श्यामल मथर मूक सा
तरल अश्रु-विनिर्मित गात ले,

'नित घिरूँ झर झर मिटूँ प्रिय!'
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!

आ मेरी चिर मिलन-यामिनी!

तममयि! घिर आ धीरे धीरे,
आज न मंजु अलकों में हीरे,
चौंका दे जग श्वास न भीरे
हौले झरें शिथिल कबरी में —
गूंथे हरसिंगार कामिनी!

हौले डाल पराग-बिछौना
आज न दें कलियों को रोने,
दें निर चंचल पहरे मौन,
जगा न निर्दिन विश्व ढालने
विधु-प्याले में मधुर चाँदनी!

परिमल भर लावे नीरव घन,
गले न मृदु उर आँसू बन घन,
हो न करुण पी पी का क्रन्दन,
अलि जुगनू के छिन्न हार को
पहिन न सिहरे चपल दामिनी!

अपलक हैं अलसाये लोचन,
मुक्ति बन गये मेरे बन्धन,
है अनन्त अब मेरा लघु क्षण,
सजनि! न मेरी उर-कम्पन में
आज बजेगी विरह-रागिनी!

तम में हो चल छाया का क्षय
सीमित की असीम में चिर लय,
एक हार में हो शत शत जय,
सजनि! विश्व का कण कण मुसका
आज कहेगा चिर सुहागिनी!

कैसे सदेश प्रिय पहुँचाती ।

दृग-जल की सित मसि है अक्षय,
मसिप्याली, झरते तारक-द्वय,

पल पल के उडते पृष्ठो पर,
सुधि से लिख श्वासो के अक्षर—

मै अपने ही बेसुधपन मे
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती ।

छायापथ में छाया से चल,
कितने आते जाते प्रतिपल,

लगते उनके विभ्रम इगित,
क्षण मे रहस्य क्षण मे परिचित,

मिलता न दूत वह चिर परिचित
जिसको उर का धन दे आती ।

अज्ञात पुलिन से उज्ज्वलतर,
किरणें प्रवाल-तरणी में भर,

नभ के नीलम-कूलों पर नित,
जो ले आती ऊषा सस्मित—

वह मेरी करुण कहानी में
मुस्कान अंकित कर जाती !

सज कज्जल-पट तारक-बिंदी
दृग अंजन मृदु पद में मेंहदी

आती भर मदिरा से गगरी
संध्या अनुराग सुहागभरी,

मेरे विषाद में वह अपने
मधुरस की बूँदें छलकाती !

डाले नव घन का अवगुंठन,
दृग-तारक में सकरुण चितवन,

पदध्वनि से सपने जागृत कर,
श्वासों में फैला मूक तिमिर

निशि अभिसारों में आँसू से
मेरी मनुहारें धो जाती !

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती !

मै बनी मधुमास आली !

आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी,

उमड आई री दृगो मे
सजनि कालिन्दी निराली !

रजत-स्वप्नो में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पचम तान ली,

बह चली निश्वास की मृदु
वात मलय-निकुज-पाली !

सजल रोमो मे बिछे है पाँवडे मधुस्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत है अज्ञात से,

क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधु-रागवाली ?

मै बनी मधुमास आली !

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है!

मेरी आँखों में ढलकर
छवि उसकी मोती बन आई,
उसके घन-प्यालों में है
विद्युत् सी मेरी परछाईं,
नभ में उसके दीप, स्नेह
जलता है पर मेरा उनमें,
मेरे हैं यह प्राण, कहानी
पर उसकी हर कम्पन में,

यहाँ स्वप्न की हाट वहाँ अलि छाया का मेला सा है!

उसकी स्मित लुटती रहती
कलियों में मेरे मधुवन की
उसकी मधुशाला में बिकती
मादकता मेरे मन की
मेरा दुख का राज्य मधुर
उसकी सुधि के पल रखवाले,
उसका सुख का कोष वेदना—
के मैंने ताले डाले

वह सौरभ का सिन्धु मधुर जीवन मधु की बेला सा है!

मुझे न जाना अलि! उसने
जाना इन आँखों का पानी,
मैंने देखा उसे नहीं
पदध्वनि है केवल पहचानी,
मेरे मानस में उसकी स्मृति
भी तो विस्मृति बन आती,
उसके नीरव मन्दिर में
काया भी छाया हो जाती

क्यों यह निर्मम खेल सजनि! उसने मुझसे खेला सा है?

तुमको क्या देखूँ चिर नूतन
जिसके काले तिल मे बिम्बित,
हो जाते लघु तृण औ' अम्बर,
निश्चलता मे स्वप्नो से जग,
चचल हो भर देता सागर !

जिस बिन सब आकार-हीन तम,
देख न पाई मै यह लोचन !

तुमको पहचानूँ क्या सुन्दर !

जो मेरे सुख दुख से उर्वर,
जिसको मै अपना कह गर्वित,
करता सूने मन को, पल मे,
जड को नव कम्पन मे कुसुमित,

जो मेरी श्वासो का उद्गम,
जान न पाई अपना ही उर !

तुमको क्या बाँधूँ छायातन !

तेरी विरह-निशा जिसका दिन,
जो स्वच्छन्द मुझे है बन्धन,
अणुमय हो बनता जो जगमय,
उडते रहना जिसका स्पन्दन,

जीवन जिससे मेरा सङ्गम,
बाँध न पाई अपना चल मन !

तुमको क्या रोकूँ चिर चचल !

जिसका मिट जाना प्रलयकर,
बनना ही समृति का अकुर,
मेरी पलको का द्रुत कम्पन,
है जिसका उत्थान पतन चिर,

मुझसे जो नव और चिरन्तन,
रोक न पाई मै वह लघु पल !
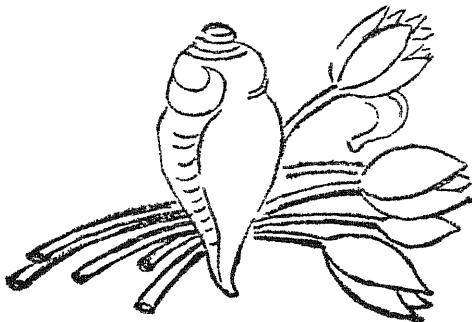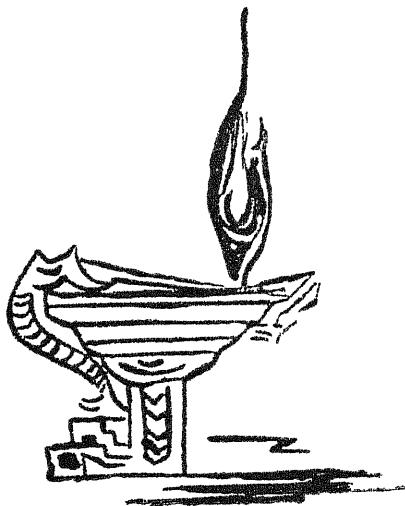
प्रिय गया है लौट रात!

सजल धवल अलस चरण,
मूक मदिर मधुर करुण,
चाँदनी है अश्रुस्नात!

सौरभ-मद ढाल शिथिल,
मृदु बिछा प्रवाल वकुल,
सो गई सी चपल वात!

युग युग जल मूक विकल,
पुलकित अब स्नेह-तरल,
दीपक है स्वप्नसात्!

किसके पदचिह्न विमल,
तारकों में अमिट विरल,
गिन रहे हैं नीर-जात!

किसकी पदचाप चकित,
जग उठे हैं जल्प अमित,
श्वास श्वास में प्रभात!

एक बार आओ इस पथ से
मलय-अनिल बन हे चिर चचल !

अधरों पर स्मित सी किरणें ले
श्रमकण से चर्चित सकरुण मुख,
अलसाईं है विरह-यामिनी
पथ मे लेकर सपने सुख-दुख,
आज सुला दो चिर निद्रा मे
सुरभित कर इसके चल कुन्तल !

मृदु नभ के उर मे छाले मे
निष्ठुर प्रहरी से पल पल के,
शलभ न जिन पर मँडराते प्रिय !
भस्म न बनते जो जल जल के,
आज बुझा जाओ अम्बर के
स्नेहहीन यह दीपक झिलमिल!

सम ही तुम हो और विश्व में
मेरा चिर परिचित सूनापन,
मेरी छाया हो मुझमें लय
छाया मे ससृति का स्पन्दन,
मै पाऊँ सौरभ सा जीवन
तेरी निश्वासों मे घुल मिल !
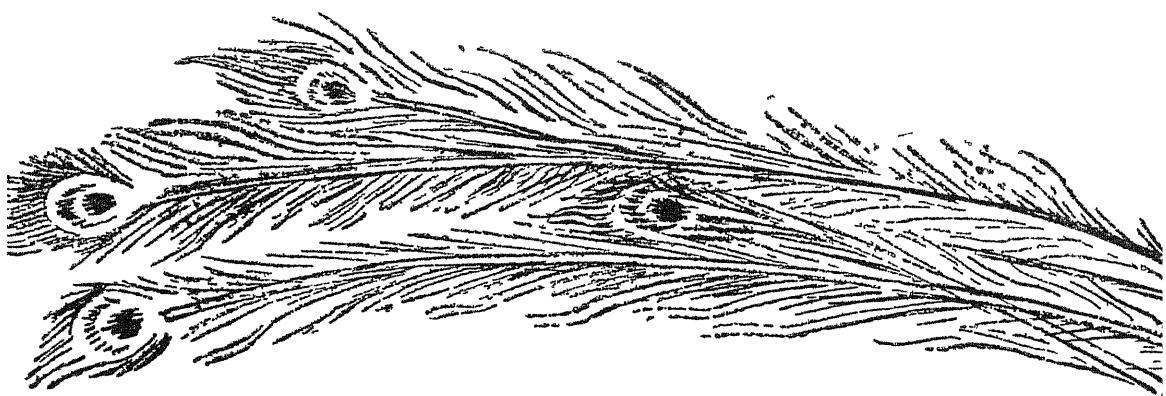
क्यों जग कहता मतवाली?

क्यों न शलभ पर लुट लुट जाऊँ,
झुलसे पंखों को चुन लाऊँ,
उन पर दीपशिखा अँकवाऊँ,

अलि! मैंने जलने ही में जब
जीवन की निधि पा ली!

क्या अनुनय में मनुहारों में,
क्या आँसू में उद्‌गारों में,
आवाहन में अभिसारों में,

जब मैंने अपने प्राणों में
प्रिय की छाँह छिपा ली!

गावें क्या अलि! अस्थिर मधुदिन,
दो दिन का मृदु मधुकर-गुंजन,
पल भर का यह मधु-मद-वितरण,

चिर वसन्त है मेरे इस
पतझर की डाली डाली!

जो न हृदय अपना बिंधवाऊँ,
निश्वासों के तार बनाऊँ,
तो कह किसका हार बनाऊँ,

मांगे न वह दृष्टि, कली ने
उनकी हँसी चुरा ली!

मैंने कब देखी मधुशाला?
कब माँगा मरकत का प्याला?
कब छलकी विद्रुम सी हाला?

मैंने तो उनकी स्मिति में
केवल आँखें धो डाली!

क्यों जग कहता मतवाली?
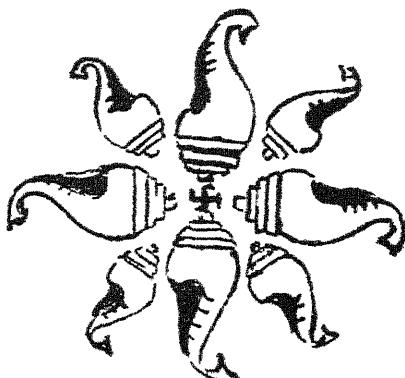
जाने किसकी स्मित रूम झूम,
जाती कलियो को चूम चूम!

उनके लघु उर मे जग, अलसित,
सौरभ-शिशु चल देता विस्मित,
हौले मृदु पद से डोल डोल,
मृदु पखुरियो के द्वार खोल!

कुम्हला जाती कलिका अजान,
वह सुरभित करता विश्व, घूम!

जाने किसकी छवि रूम झूम,
जाती मेघो को चूम चूम!

वे मन्थर जल के बिन्दु चकित,
नभ को तज ढुल पडते विचलित!
विद्युत् के दीपक ले चचल,
सागर सा गर्जन कर निष्फल,

घन थकते उनको खोज खोज,
फिर मिट जाते ज्यो विफल धूम!

जाने किसकी ध्वनि झूम झूम,
जाती अचलों को चूम चूम!

उनके जड़ जीवन में संचित,
सपने बनते निर्झर पुलकित,
प्रस्तर के अणु घुल घुल गंभीर,
उनसे भरते नव स्नेह-नीर!

वह बह चलता अज्ञात देश,
प्यासों में भरता प्राण, झूम!

जाने किसकी सुधि झूम झूम,
जाती पलकों को चूम चूम!

उर-कोषों के मोती अविदित,
बन पिघल पिघल कर तरल रजत,
भरते आँखों में बार बार,
रोके न आज रुकते अपार,

मिटते ही जाते हैं प्रतिपल,
इन धूलि-कणों के चरण चूम!

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,

रहे खेलते आँखमिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम' !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

अपने दो आकार बनाने,
दोनों का अभिसार दिखाने
भूलों का संसार बसाने,

जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस हँस दे डाला था निरुपम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

कैसा पतझर कैसा सावन,
कैसी मिलन विरह की उलझन,
कैसा पल घड़ियोंमय जीवन,

कैसे निशि-दिन कैसे सुख-दुख
आज विश्व मे तुम हो या तम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अङ्गराग पुलकों का मल मल,
स्वप्नों से आँजूँ पलकें चल,

किस पर रीझूँ किस से रूठूँ,
भर लूँ किस छवि मे अन्तरतम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,

तुम मुझ में अपना सुख देखो
मैं तुम मे अपना दुख प्रियतम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !
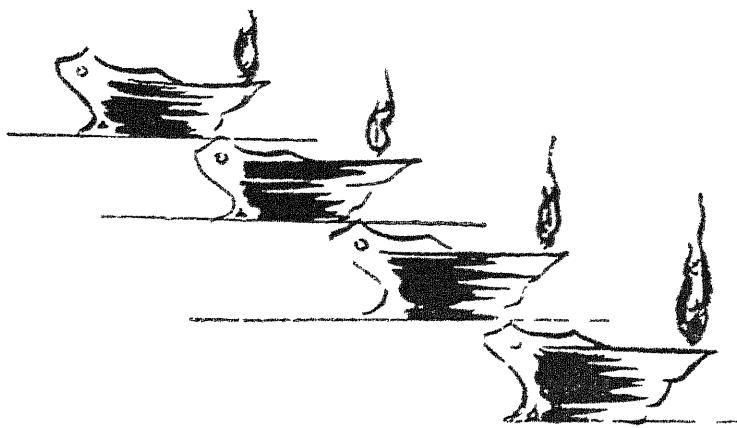
प्रिय ! जिसने दुख पाला हो !

जिन प्राणों से लिपटी हो
पीडा सुरभित चन्दन सी,
तूफानो की छाया हो
जिसको प्रिय-आलिङ्गन सी,

जिसको जीवन की हारे
हो जय के अभिनन्दन सी,
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो !

जो उजियाला देना हो
जल जल अपनी ज्वाला मे,
अपना सुख बाँट दिया हो
जिसने इस मधुशाला मे,

हँस हालाहल ढाला हो
अपनी मधु की हाला मे,
मेरी साधो से निर्मित
उन अधरों का प्याला हो !

दीपक में पतङ्ग जलता क्यों?
प्रिय की आभा में जीता फिर
दूरी का अभिनय करता क्यों?
पागल रे पतङ्ग जलता क्यों?

उजियाला जिसका दीपक में,
मुझ में भी है वह चिनगारी,
अपनी ज्वाला देख, अन्य की
ज्वाला पर इतनी ममता क्यों?

गिरता कब दीपक, दीपक में
तारक में तारक कब घुलता?
तेरा ही उन्माद शिखा में
जलता है फिर आकुलता क्यों!

पाता जड़ जीवन, जीवन से,
तम दिन में मिल दिन हो जाता,
पर जीवन के आभा के कण,
एक सदा भ्रम में फिरता क्यों?

जो तू जलने को पागल हो,
आँसू का जल स्नेह बनेगा
धूमहीन निस्पन्द जगत में
जल बुझ, यह क्रन्दन करता क्यों?
दीपक में पतङ्ग जलता क्यों?

आँसू का मोल न लूँगी मैं!

यह क्षण क्या? द्रुत मेरा स्पन्दन,
यह रज क्या? नव मेरा मृदु तन,
यह जग क्या? लघु मेरा दर्पण,
प्रिय तुम क्या? चिर मेरे जीवन,

मेरे सब सब में प्रिय तुम,
किससे व्यापार करूँगी मैं?

आँसू का मोल न लूँगी मैं!

निर्जल हो जाने दो बादल,
मधु से रीते सुमनों के दल,
करुणा बिन जगती का अंचल,
मधुर व्यथा बिन जीवन के पल,

मेरे दृग में अक्षय जल,
रहने दो विश्व भरूँगी मैं!

आँसू का मोल न लूँगी मैं!

मिथ्या, प्रिय मेरा अवगुण्ठन,
पाप शाप, मेरा भोलापन!
चरम सत्य, यह सुधि का दंशन,
अन्तहीन, मेरा करुणा-कण,

युग युग के बन्धन को प्रिय!
पल में हँस 'मुक्ति' करूँगी मैं!

आँसू का मोल न लूँगी मैं!

कमलदल पर किरण-अंकित
चित्र हूँ मैं क्या चितेरे?

वासना की यामिनी में
चाँदनी के मान में

तूलिका का इन्द्रधनु
तुमने रँगा उर प्यार में

काल के लघु अश्रु से
धुल जायँगे क्या रङ्ग मेरे?

तड़ित् सुधि में वेदना में
करुण पावस-गान भी
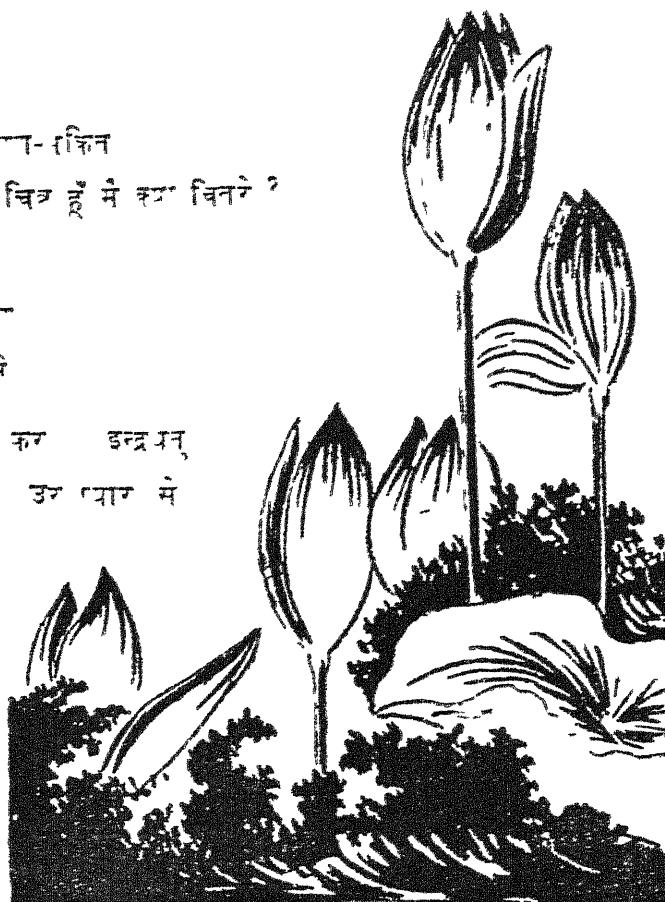
आँसू स्वप्नों में दिया
तुमने वसन्त-प्रभात भी,

क्या शिरीष-प्रसून से
कुम्हलायँगे यह साज मेरे?

है युगों का मूक परिचय
देश से इस राह से,

हो गई सुरभित यहाँ की
रेणु मेरी चाह से,

नाश के निश्वास से
मिट पायँगे क्या चिह्न मेरे ?

नाच उठते निमिष पल
मेरे चरण की चाप से,

नाप ली निःसीमता
मैंने दृगों के माप से,

मृत्यु के उर में समा क्या
पायँगे अब प्राण मेरे ?

आँक दी जग के हृदय में
अमिट मेरी प्यास क्यों ?

अश्रुमय अवसाद क्यों यह
पुलक-कम्पन-लास क्यों ?

मैं मिटूँगी क्या अमर
हो जायँगे उपहार मेरे ?
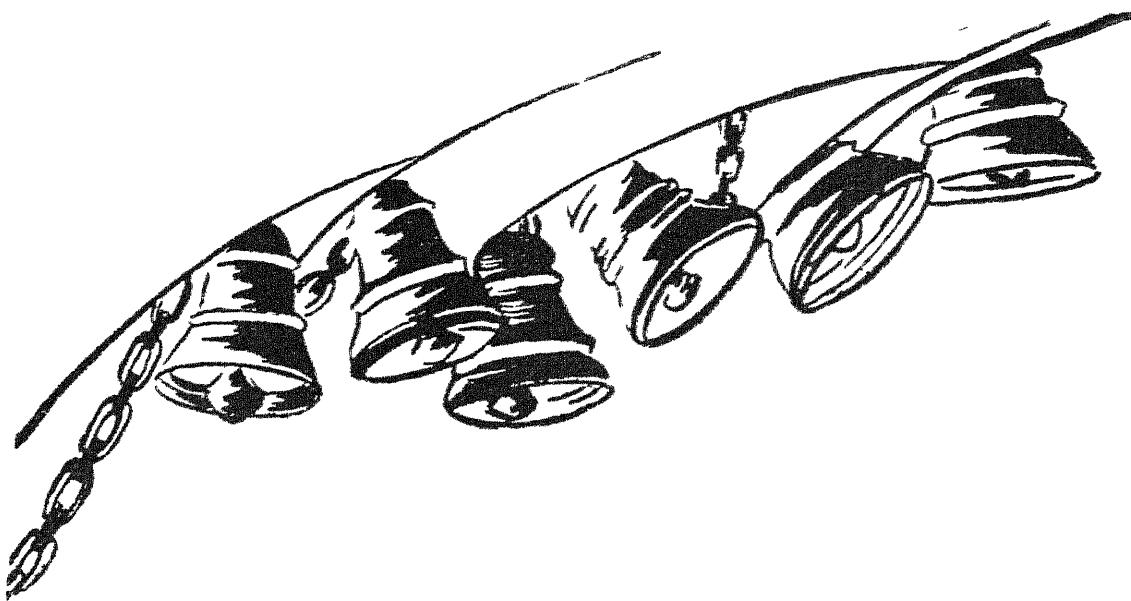
प्रिय! मैं हूँ एक पहेली भी!

जितना मधु जितना मधुर हास
जितना मद तेरी चितवन में,
जितना क्रन्दन जितना विषाद
जितना विष जग के स्पन्दन में

पी पी मैं चिर दुख-प्यास बनी
सुख-सरिता की रंगरेली भी!

मेरे प्रतिरोमों से अविरत
झरते हैं निर्झर और आग
करती विरक्ति आसक्ति प्यार
मेरे श्वासों में जाग जाग

प्रिय मैं सीमा की गोद पली
पर हूँ असीम से खेली भी!

क्या नई मेरी कहानी !

विश्व का कण कण सुनाता
प्रिय वही गाथा पुरानी !

सजल बादल का हृदय-कण,
चू पड़ा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित
तृषित दरका पंक का उर,

मिट गई उसमे तड़ित् सी
हाय वारिद की निशानी !

करुण वह मेरी कहानी !

जन्म से मृदु कञ्ज-उर में
नित्य पाकर प्यार लालन,
अनिल के चल पङ्ख पर फिर
उड गया जब गन्ध उन्मन,

बन गया तब सर अपरिचित
हो गई कलिका बिरानी !

निठुर वह मेरी कहानी !

चीर गिरि का कठिन मानस
बह गया जो स्नेह-निर्झर,
ले लिया उसको अतिथि कह
जलधि ने जब अंक में भर

वह सुधा सा मधुर पल में
हो गया तब क्षार पानी !

अमिट वह मेरी कहानी !

मधुवेला है आज
अरे तू जीवन-पाटल फूल!

आई दुख की रात मानिनी की बने जयमाल
सुख की मन्द बतास खोलती पलकें दे दे ताल

डर मत रे सुकुमार!
तुझे दुलराने आए शूल!

अरे तू जीवन-पाटल फूल!

भिक्षुक सा यह विश्व खड़ा है पाने करुणा प्यार
हँस उठ रे नादान खोल दे पंखुरियों के द्वार

रीते कर ले कोष
नहीं कल सोना होगा धूल!

- अरे तू जीवन-पाटल, फूल!

यह पतझर मधुवन भी हो!

दुख सा तुषार सोना हो
वसुधा सा जब उपवन में,
उस पर छलका देती हो
वनश्री मधु भर चितवन में,
शूलों का दंशन भी हो
कलियों का चुम्बन भी हो!

सूखे पल्लव फिरते हों
कहते जब करुण कहानी,
मारुत परिमल का आसव
नभ दे नयनों का पानी
जब अलिकुल का क्रन्दन हो
पिक का कलकूजन भी हो!

जब सन्ध्या ने आँसू में
अंजन से हो मसि घोली,
तब प्राची के अञ्चल में
हो स्मित से चर्चित रोली,
काली अपलक रजनी में
दिन का उन्मीलन भी हो!

जब पलकें गढ़ लेती हों
स्वाती के जल बिन मोती
अधरों पर स्मित की रेखा
हो आकर उनको धोती
निर्मम निदाघ में मेरे
करुणा का नव घन भी हो!

झरते नित लोचन मेरे हो!

जलती जो युग युग से उज्ज्वल,
आभा से रच रच मुक्ताहल
वह तारक-माला उनकी,
चल विद्युत् के कंकण मेरे हो!
झरते नित लोचन मेरे हो!

ले ले तरल रजत औ' कंचन,
निशि-दिन ने लीपा जो आँगन,
वह सुषमामय नभ उनका,
पल पल मिटते नव घन मेरे हो!
झरते नित लोचन मेरे हो!

पद्मराग-कलियों से विकसित,
नीलम के अलियों से मुखरित,
चिर सुरभित नन्दन उनका,
यह अश्रु-भार-नत तृण मेरे हो!
झरते नित लोचन मेरे हो!

तम सा नीरव नभ सा विस्तृत,
हास रुदन से दूर अपरिचित,
वह सूनापन हो उनका,
यह सुखदुखमय स्पन्दन मेरे हो!
झरते नित लोचन मेरे हो!

लाये कौन सँदेश नये घन!

अम्बर गर्वित,
हो आया नत,

चिर निस्पन्द हृदय मे उसके
उमडे री पुलको के सावन
लाये कौन सँदेश नये घन

चौंकी निद्रित,
रजनी अलसित,

श्यामल पुलकित कम्पित कर मे
दमक उठे विद्युत् के कंकण!
लाये कौन सँदेश नये घन!

कहता जग दुख को प्यार न कर !

अनबींधे मोती यह दृग के
बँध पाये बन्धन में किसके ?

पल पल बनते पल पल मिटते,
तू निष्फल गुथ गुथ हार न कर !

कहता जग दुख को प्यार न कर !

किसने निज को खोकर पाया ?
किसने पहचानी वह छाया ?

तू भ्रम वह तम तेरा प्रियतम
आ सूने में अभिसार न कर !

कहता जग दुख को प्यार न कर !

यह मधुर कसक तेरे उर की,
कंचन की और न हीरक की,

मेरी स्मित से इसका विनिमय
कर ले या चल व्यापार न कर !

कहता जग दुख को प्यार न कर !

दर्पणमय है अणु अणु मेरा,
प्रतिबिम्बित रोम रोम तेरा,

अपनी प्रतिछाया से भोले !
इतनी अनुनय मनुहार न कर !

कहता जग दुख को प्यार न कर !

सुख-मधु में क्या दुख का मिश्रण !
दुख-विष में क्या सुख-मिश्री-कण !

जाना कलियों के देश तुझे
तो शूलों से शृङ्गार न कर !

कहता जग दुख को प्यार न कर !

जग करुण करुण, मै मधुर मधुर!
दोनो मिल कर देते रजकण
चिर करुण-मधुर सुन्दर सुन्दर!

जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मै पिक बन गाती डाल डाल,
सुन फूट फूट उठते पल पल,
सुख-दुख-मजरियो के अकुर!

विस्मृति-शशि के हिम-किरण-बाण,
करते जीवन-सर मूकप्राण,
बन मलय-पवन चढ रश्मि-यान,
मै आती ले मधु का सँदेश,
भरने नीरव उर मे मर्मर!

यह नियति-तिमिर-सागर अपार,
बुझते जिसमे तारक-अँगार,
मै प्रथम रश्मि सी कर शृँगार,
आ अपनी छबि से ज्योतिर्मय,
कर देती उसकी लहर लहर!

युग से थी प्रिय की मूक बीन,
ये तार शिथिल कम्पनविहीन,
मैने छू उनकी नीद छीन,
स्पन्दन भर डाला क्षण मे
नव झकारो से करुणमधुर!
जग करुण करुण, मै मधुर मधुर!

तुम दुख बन इस पथ से आना!

शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन,

क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना!

वह सौरभ हूँ मैं जो उडकर
कलिका मे लौट नही पाता,
पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसको जग ने सौरभ जाना!

नित जलता रहने दो तिल तिल,
अपनी ज्वाला में उर मेरा,
इसकी विभूति में, फिर आकर
अपने पद-चिह्न बना जाना!

वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आँखमिचौनी यह अपनी,
जीवन मे खोज तुम्हारी है
मिटना ही तुमको छू पाना!

अलि वरदान मेरे नयन!

उमडता भव-अतलसागर
लहर लेते सुखसरोवर,
चाहते पर अश्रु का लघु
बिन्दु प्यासे नयन!
प्रिय घनश्याम चातक नयन!

पी उजाला तिमिर पल में,
फकना रविपात्र जल में,
नम पिलाते स्नेह अणु अणु-
को छलकते नयन!
दुख-मुद के चषक यह नयन!

छू अरुण का किरण-चामर
बुझ गये नभ-दीप निर्झर,
जल रहे अविराम पथ में
किन्तु निश्चल नयन!
तममय विरह दीपक नयन!

उलझते नित बुद्बुद गत,
घेरते आवर्त्त आ द्रुत,
पर न रहता लेश, प्रिय की
स्मित रँग यह नयन!
जीवन-सरित-सरसिज नयन!

मै मिटूँ ज्यो मिट गया घन,
उर मिटे ज्यो तडित्-कम्पन,
फूट कण कण से प्रकट हो
किन्तु अगणित नयन!
प्रिय के स्नेह-अकुर नयन!

अलि वरदान मेरे नयन!

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !

पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !

स्नेहभरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !

धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे !
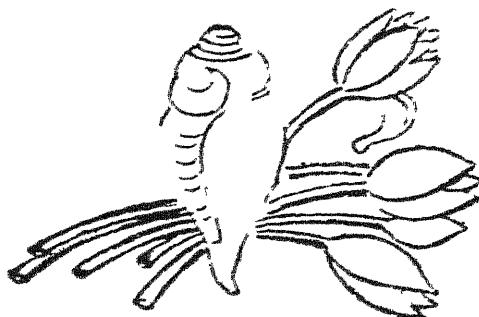
प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली!

मेरे ही मृदु उर में हँस बस,
श्वासों में भर मादक मधु-रस,
लघु कलिका के चल परिमल से
वे नभ छाये री मैं वन फूली!

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली!

तज उनका गिरि सा गुरु अन्तर,
मैं सिकता-कण सी आई झर;
आज सजनि उनसे परिचय क्या!
वे घनचुम्बित मैं पथ-धूली!

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली!

उनकी वीणा की नव कम्पन
डाल गई री मुझ में जीवन
खोज न पाई उनका पथ मैं
प्रतिध्वनि सी मन में फूली!

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली

जाग बेसुध जाग !

अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार,
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया, सन्ताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप,

करुणा के दुलारे जाग !

शङ्ख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छबिमान
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार,
गूँजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार,

वृन्दाविपिनवाले जाग !

× × ×

रात के पथहीन तम में मधुर जिसके श्वास,
फैले भरते लघु कणों में भी असीम सुवास,
कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज
सुभग ! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज,
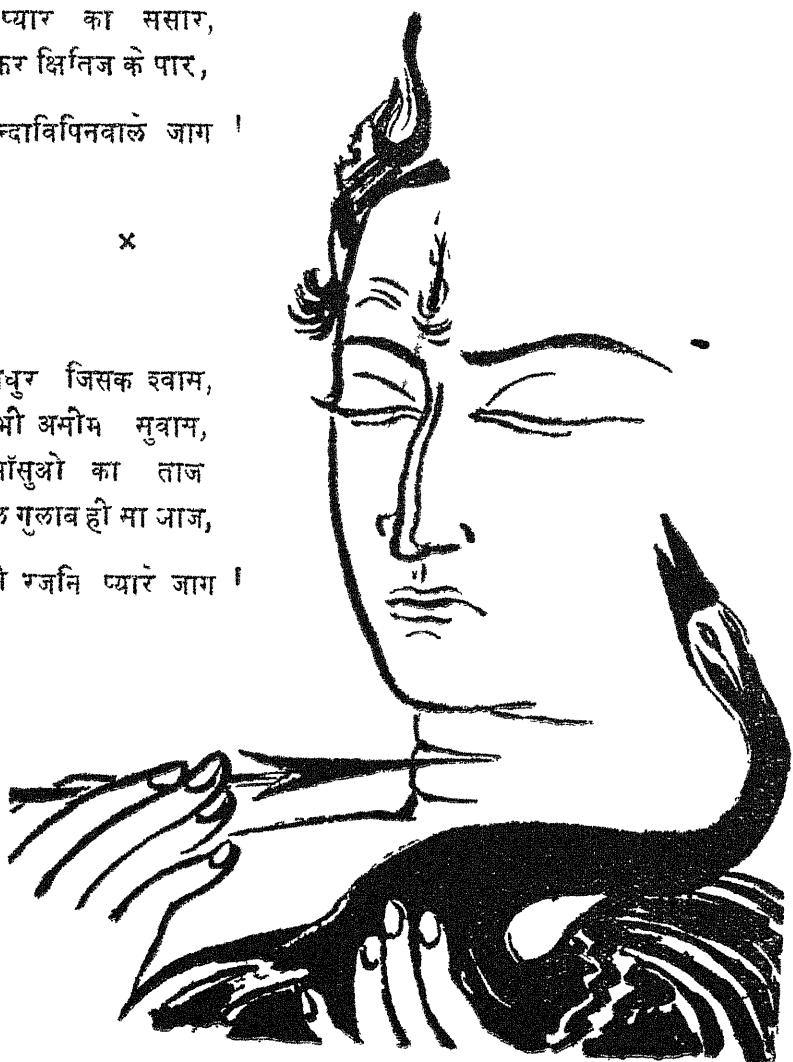
बीती रजनि प्यारे जाग !

लय गीत मदिर, गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

आलोक-तिमिर सित-असित चीर
सागर-गर्जन रुनझुन मंजीर

उड़ता झंझा में अलक-जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि-स्वर !

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

रवि-शशि तेरे अवतंस लोल
सीमन्त-जटित तारक अमोल,

चपला विभ्रम स्मित इन्द्रधनुष
हिमकण बन झरते स्वेद-निकर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

युग हैं पलकों का उन्मीलन,
स्पन्दन में अगणित लय-जीवन,
तेरी श्वासों में नाच नाच
उठता बेसुध जग सचराचर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

तेरी प्रतिध्वनि बनती मधुदिन
तेरी समीपता पावस-क्षण,
रूपसि ! छूते ही तुझको मिट,
जड पा लेता वरदान अमर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

उड़ कण कण के प्याले झलमल,
छलकी जीवन-मदिरा छलछल,
पीती थक झुक झुक झूम झूम,
तू घूँट घूँट फेनिल सीकर!

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!

बिखराती जाती तू सहास,
नव तन्मयता उल्लास लास,
हर अणु कहता उपहार बनूँ
पहले छू लूँ जो मृदुल अधर!

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!

हे सृष्टि-प्रलय के आलिङ्गन!
सीमा-असीम के मूक मिलन!
कहता है तुझको कौन घोर,
तू चिर रहस्यमयि कोमलतर!

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!

तेरे हित जलते दीप-प्राण,
खिलते प्रसून हँसते विहान,
श्यामाङ्गिनि! तेरे कौतुक को
बनता जग मिट मिट सुन्दरतर!

प्रिय-प्रेयसि! तेरा लास अमर!

उर तिमिरमय घर तिमिरमय
चल सजनि दीपक बार ले !

राह में रो रो गये हैं
रात और विहान तेरे
काँच से टूटे पड़े यह
स्वप्न, भूलें, मान तेरे,

फूलप्रिय पथ शूलमय
पलकें बिछा सुकुमार ले !

तू दिन जीवन में घिरे घन—
बन, उड़े जो श्याम उर में
पलक-सीपी में हुए मुक्ता
सुकोमल और बरसे,

मिट रहे नित धूलि में
तू गूँथ इनका हार ले !

मिलनवेला में अलस तू
सो गई कुछ जाग कर जब,
फिर गया वह, स्वप्न में
मुस्कान अपनी आँक कर तब !

आ रही प्रतिध्वनि वही फिर
नींद का उपहार ले !
चल सजनि दीपक बार ले !

तुम सो जाओ मै गाऊँ !

मुझको सोते युग बीते,
तुमको यो लोरी गाते,
जब आओ मै पलको मे
स्वप्नो से सेज बिछाऊँ !

प्रिय ! तेरे नभमन्दिर के
मणिदीपक बुझ बुझ जाते,
जिनका कण कण विद्युत् है
मै ऐसे प्राण जलाऊ !

क्यो जीवन के शूलो मे
प्रतिक्षण आते जाते हो ?
ठहरो सुकुमार ! गला कर
मोती पथ मे फैलाऊँ !

'पथ की रज मे है अकित,
तेरे पदचिह्न अपरिचित,
मै क्यो न इसे अजन कर
आँखो में आज बसाऊँ !

जल सौरभ फैलाता उर,
तब स्मृति जलती है तेरी,
लोचन कर पानी पानी
मैं क्यों न उसे सिंचवाऊँ!

इन भूलों में मिल जाती,
कलियाँ तेरी माला की,
मैं क्यों न इन्हीं काँटों में
संचय जग के कर जाऊँ?

अपनी असीमता देखो
लघु दर्पण में पल भर तुम!
मैं क्यों न यहाँ क्षण क्षण को
धो धो कर मुकुर बनाऊँ!

हँसने में छू जाते तुम
रोने में वह सुधि आती,
मैं क्यों न जगा अणु-अणु को
हँसना रोना सिखलाऊँ!

जागो बेसुध रात नहीं यह !

भीगी मानस के दुखजल से,
भीनी उडते सुख-परिमल से,

है बिखरे उर की निश्वासे,
मादक मलय-वतास नही यह

पारद के मोती से चचल,
मिटते जो प्रतिपल बन ढुलढुल,

है पलको मे करुणा के अणु,
पाटल पर हिमहास नही यह !

कूलहीन तम के अन्तर मे,
दमक गई छिप जो क्षण भर मे,

है विषाद मे बिखरी स्मृतियाँ,
घन-चपला का लास नही यह !

श्रमकण मे ले, ढुलते हीरक,
अचल से ढक आशा-दीपक

तुम्हे जगाने आई पीडा,
स्वप्नो का परिहास नही यह !

केवल जीवन का क्षण मेरे !
फिर क्यों प्रिय मुझको अग जग-
का प्यासा कण कण घेरे !

नत घन-विद्युत् माग रहे पल,
अम्बर फैलाये नित अचल,
उसको माँग रहे हँस
रोकर कितने गात सबेरे !

कलियाँ रोती हैं सौरभ भर,
निष्ठुर मानस आँसूमय कर
इस क्षण के हित मत्त समीरण
करता शत शत फेरे !

तारे बुझते हैं जल निशिभर,
स्नेह नया लाते भर फिर फिर,
सागर की लहरों लहरों में
करती प्यास बसेरे
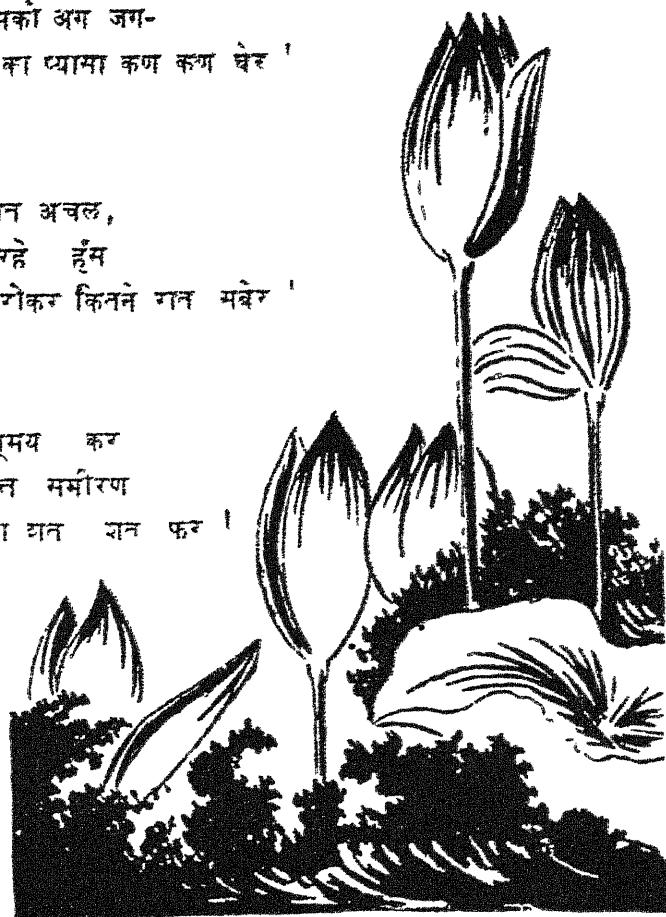
लुटता इस पर मधुमद परिमल,
झर जाते गल कर मुक्ताहल,
किसको दूँ किसको लौटाऊँ,
लघु पल ही धन मेरे !

चतुर्थ याम

सान्ध्य गीत

रचना काल
१९३४-१९३६

प्रिय ! सान्ध्य गगन
मेरा जीवन !

यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग
सुधिभीने स्वप्न रँगीले घन !
साधों का आज सुनहलापन
घिरता विषाद का तिमिर सघन
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन

लाता भर श्वासों का समीर
जग से स्मृतियों का गन्ध धीर
सुरभित हैं जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !
अब आदि अन्त दोनों मिलते,
रजनी-दिन-परिणय से खिलते
आँसू मिस हिम के कण ढुलते
ध्रुव आज बना स्मृति का चल क्षण !

इच्छाओं के सोने से शर
किरणों से द्रुत झीने सुन्दर
सूने असीम नभ में चुभकर—
बन बन आते नक्षत्र-सुमन !
घर आज चले सुख-दुख-विहग
तम पोंछ रहा मेरा अग जग
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन !

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !
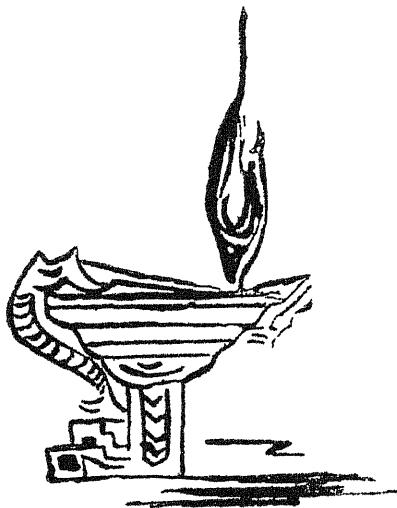
श्वासों में सपने कर गुम्फित,
बन्दनवार वेदना - चर्चित,
भर दुख से जीवन का घट नित,
मूक क्षणों में मधुर भरूँगी भारती !

दृग मेरे यह दीपक झिलमिल,
भर आँसू का स्नेह रहा ढुल,
सुधि तेरी अविराम रही जल,
पद-ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती !

यह लो प्रिय ! निधियामय जीवन,
जग की अक्षय स्मृतियों का धन,
सुख - सोना करुणा - हीरक - कण,
तुमसे जीता आज तुम्हीं को हारती !
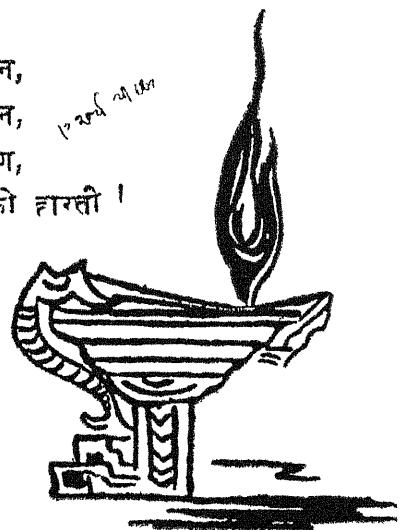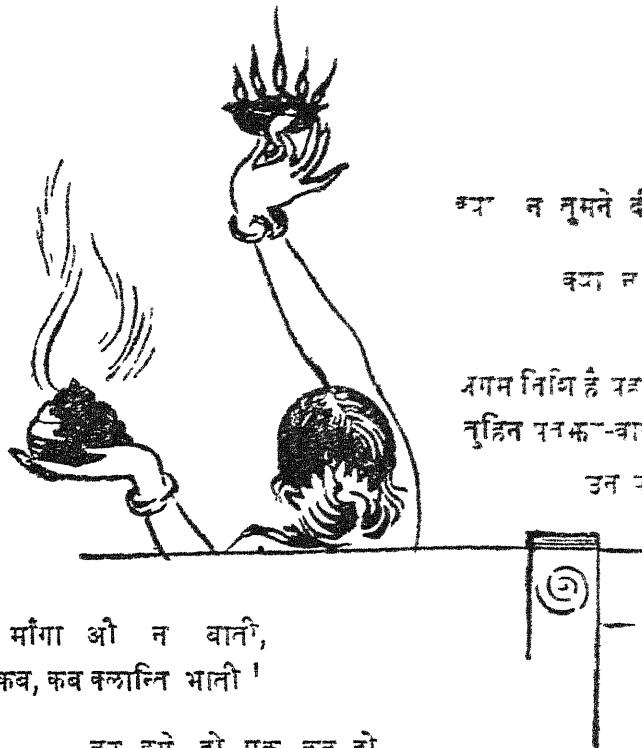
क्या न तुमने दीप बाला?

क्या न इसके शीन अधरों—
से लगाई अमर ज्वाला?

अगम निशि है यह अकेला
तुहिन पतझर-वात-बेला
उन करों की सतत स्मृति में
पहनता अङ्गार-माला!

स्नेह माँगा औ न बाती,
नींद कब, कब क्लान्ति भाती!

वर इसे दो एक कह दो
मिलन के क्षण का उजाला!

झर इसी से अग्नि के कण,
बन रहे हैं वेदना-घन,
प्राण में इसने विरह का
मोम सा मृदु शलभ पाला!

यह जला निज धूम पीकर,
जीत डाली मृत्यु जी कर
रत्न सा नभ में तुम्हारा
अंक मृदु पद का सँभाला!

यह न झंझा से बुझेगा,
बन मिटेगा मिट बनेगा,
भय इसे है हो न जावे
प्रिय तुम्हारा पथ काला!

रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसकी नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !

झूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले !
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

छोड़ किस पाताल का पुर ?
राग से बेसुध, चपल सपने मजीले नयन में भर,

रात नभ के फूल लाई,
आँसुओं से कर सजीले !
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !
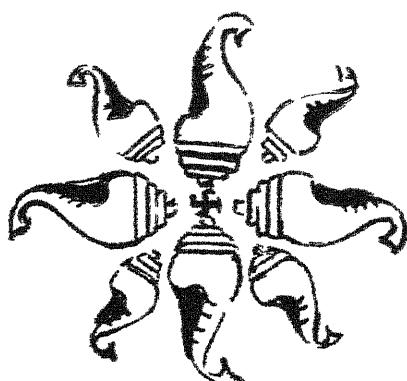
अश्रु मेरे माँगने जब
नीद म वह पास आया !

स्वप्न सा हँस पास आया !

हो गया दिव की हँसी म
शून्य म सुरचाप अंकित,
रश्मि-रोमों में हुआ
निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित,

अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया !

वेदना का अग्निकण जब
मोम से उर मे गया बस,
मृत्यु-अंजलि मे दिया भर
विश्व ने जीवन-सुधा-रस !

माँगने पतझार से
हिम-बिन्दु तब मधुमास आया !

अमर सुरभित साँस देकर,
मिट गये कोमल कुसुम झर,
रविकरो मे जल हुए फिर,
जलद मे साकार सीकर,

अंक मे तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया !

मैं आज चुपा आई चातक,
मैं आज सुला आई कोकिल,
कण्टकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल!

सोया समीर नीरव जग पर
स्मृतियों का भी मृदु भार नहीं!

रुँधे हैं, सिहरा सा दिगन्त,
नत पाटलदल से मृदु बादल,
उस पार रुका आलोक-यान,
इस पार प्राण का कोलाहल!

बेसुध निद्रा है आज बुने—
जाते श्वासों के तार नहीं!

दिन रात पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार,
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह पन्थ सूना अपार!

फिर कौन कह रहा है सूना
अब तक मेरा अभिसार नहीं?

जगने प्रिय यौवन की सुधि ?
लहराती आती मधु-बयार !

रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग,

यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार

पाटल के सुरभित रंगों से रँग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल,
गुथ दे रशना मे अलि-गुंजन से पूरित झरते बकुल-फूल,

रजनी से अंजन माँग सजनि
दे मेरे अलसित नयन सार

तारक-लोचन से सींच-सींच नभ करता रज को विरज आज,
बरसाता पथ मे हरसिंगार केशर से चर्चित सुमन-लाज

कण्टकित रसालों पर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार !
लहराती आती मधु-बयार

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !

अर्चना हों शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले

आज करुणा-स्नात उजला
दुःख हो मेरा पुजारी !

नूपुरों का मूक छूना,
मुग्ध कर दे विश्व सूना,

यह अगम आकाश उतरे
कम्पनों का हो भिखारी !

लोल तारक भी अचंचल
चल न मेरा एक कुन्तल,

अचल रोमों में समाई
मुग्ध हो गति आज सारी !

राग मद की दूर लाली
साध भी इसमें न पाली,

शून्य चितवन में बसेगी
मूक हो गाथा तुम्हारी !

मेरा मनल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

सेतु शूलों का बना बाधा विरह-वारीश का जल,
फूल सी पलकें बनाकर प्यालियाँ बाँटा हलाहल,

दुखमय सुख
सुख भरा दुख,
कौन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते?

नयन की नीलम तुला पर मोतियों से प्यार तोला,
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला,

भ्रान्तिमय कण,
श्रान्तिमय क्षण,
थे मुझे वरदान जो तुम
माँग ममता शेष लेते!

रे पपीहे पी कहाँ ?
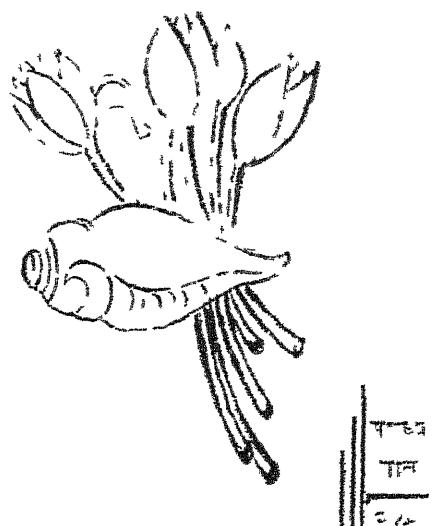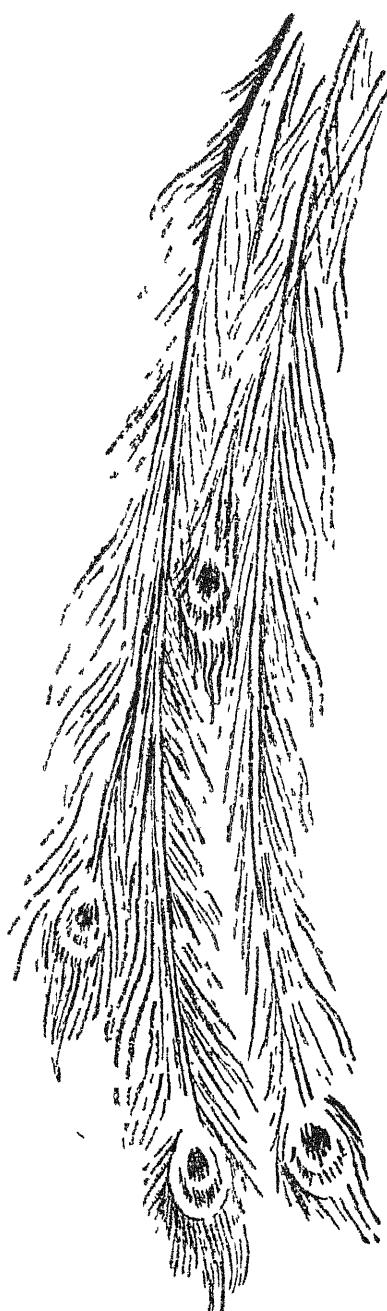
खोजता तू इस क्षितिज से उस क्षितिज तक शून्य अम्बर,
लघु परों से नाप सागर,

नाप पाता प्राण मेरे
प्रिय समा कर भी कहाँ ?

हँस डुबा देगा युगों की प्यास का संसार भर तू
कण्ठगत लघु बिन्दु कर तू !

प्यास ही जीवन, सकूँगी
तृप्ति में मैं जी कहाँ ?

चपल बन बन कर मिटेगी झूम तेरी मेघमाला !
मैं स्वयं जल और ज्वाला !

दीप सी जलती न तो यह
सजलता रहती कहाँ ?

साथ गति के भर रही हूँ विरति या आसक्ति के स्वर,
मैं बनी प्रिय-चरण-नूपुर !

प्रिय बसा उर में सुभग !
सुधि खोज की बसती कहाँ ?

शलभ मैं शापमय वर हूँ!
किसी का दीप निष्ठुर हूँ!

ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृंगारमाला,
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंगशाला,
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ!

नयन में रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी,
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि-समाधि होगी,
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ!

हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल,
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ!

कौन आया था न जाना
स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अँगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने,
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ!

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा,
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला-केवल अँधेरा,
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ!

पंकज-कली!

क्या तिमिर कह जाता करुण?
क्या मधुर दे जाती किरण?
किस प्रेममय दुख से हृदय में
अश्रु में मिश्री घुली?

किस मलय-सुरभित अंक रह—
आया विदेशी गन्धवह?
उन्मुक्त उर अस्तित्व खो
क्यों तू उसे भुजभर मिली?

रवि से झुलसते मौन दृग
जल में सिहरते मृदुल पग,
किस व्रतव्रती तू तापसी
जाती न सुख दुख से छली?

मधु से भरा विधुपात्र है,
मद से उनींदी रात है,
किस विरह में अवनतमुखी
लगती न उजियाली भली?

यह देख ज्वाला में पुलक,
नभ के नयन उठते छलक!
तू अमर होने नभधरा के
वेदना-पय से पली!

पंकज कली! पंकज कली!

हे मेरे चिर सुन्दर अपने!
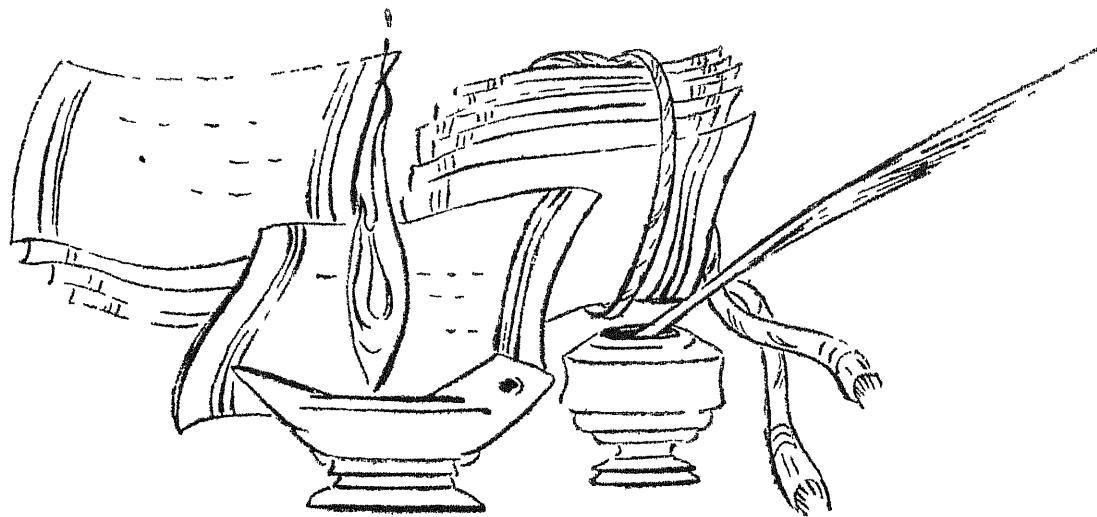
भेज रही हूँ श्वासें क्षण क्षण,
सुभग मिटा देंगी पथ से यह तेरे मृदु चरणों का अंकन!
खोज न पाऊँगी निर्भय
आओ जाओ बन चंचल सपने!

गीले अंचल में धोया सा—
राग लिए, मन खोज रहा कोलाहल में खोया खोया सा!
मोम-हृदय जल के कण ले
मचला है अंगारों में तपने!

नूपुर-बन्धन में लघु मृदु पग,
आदि अन्त के छोर मिलाकर वृत्त बन गया है मेरा मग!
पाया कुछ पद-निक्षेपों में
मधु सा मेरी साध मधुप ने!

यह प्रतिपल तरणी बन आते,
पार, कहीं होता तो यह दृग अगम समय सागर तर जाते!
अन्तहीन चिर विरहमाप से
आज चला लघु जीवन नपने!

मैं सजग चिर साधना ले!

सजग प्रहरी से निरन्तर,
जागते अलि रोम निर्भर,
निमिष के बुद्‌बुद्‌ मिटाकर,
एक रस है समय-सागर!

हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले!

मूँद पलकों में अचंचल
नयन का जादूभरा तिल
दे रही हूँ अलख अविकल—
को सजीला रूप तिल तिल

आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनों की कामना ले!

विरह का युग आज दीखा
मिलन के लघु पल सरीखा
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ' न सीखा!

मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले!

मैं किसी की मूक छाया हूँ न क्यों पहचान पाता !

उमड़ता मेरे दृगों में बरसता घनश्याम मैं जो,
अधर में मेरे खिला नव इन्द्रधनु अभिराम मैं जो,

बोलता मुझ में वही जग मौन में जिसको बुलाता !

जो न होकर भी बना सीमा क्षितिज वह रिक्त हूँ मैं,
विरति में भी चिर विरति की बन गई अनुरक्ति हूँ मैं,

शून्यता में शून्य का अभिमान ही मुझको बनाता !

यह सुख दुखमय राग
बजा जाते हो क्यों अलबेले ?

चितवन से रेखा अंकित कर,
रागमयी स्मित से नव रँग भर,
अश्रुकणों से धोते हो क्यों
फिर वे चित्र रँगीले ?

श्वासों से पलकें स्पन्दित कर,
स्वप्नों में स्मृतियाँ जागृत कर,
पद-ध्वनि से बेसुध करते क्यों
यह जागृति के मेले ?

रोमों में भर आकुल कम्पन,
मुस्कानों में दुख की सिहरन,
जीवन को चिर प्यास पिलाकर
क्यों तुम निष्ठुर खेले ?

कण कण में रच अभिनव बन्धन,
क्षण क्षण को कर भ्रममय उलझन,
पथ में बिखरा शूल
बुला जाते हो दूर अकेले !

सो रहा है विश्व पर प्रिय तारकों में जागता है!

नियति बन कुशली चितेरा—

रंग गई सुखदुख रंगों में

मृदुल जीवन-पात्र मेरा!

स्नेह की देती सुधा भर अश्रु खारे माँगता है!

धूपछाँही विरह-वेला

विश्व-कोलाहल बना वह

ढूँढती जिसको अकेला,

छाँह दृग पहचानते पद-चाप यह उर जानता है!

रङ्गमय है देव दूरी!

छू तुम्हें रह जायगी यह

चित्रमय क्रीडा अधूरी!

दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है!

वह सुनहला हास तेरा—

अंकभर घनसार सा

उड जायगा अस्तित्व मेरा!

मूँद पलकें रात करती जब हृदय हठ ठानता है!

मेघरूँधा अजिर गीला—

टूटता सा इन्दु-कन्दुक

रवि झुलसता लोल पीला!

यह खिलौने और यह उर! प्रिय नई असमानता है!

री कुंज की शेफालिके!

गुदगुदाता वात मृदु उर,
निशि पिलाती ओस-मद भर,
आ झुलाता पात-मर्मर
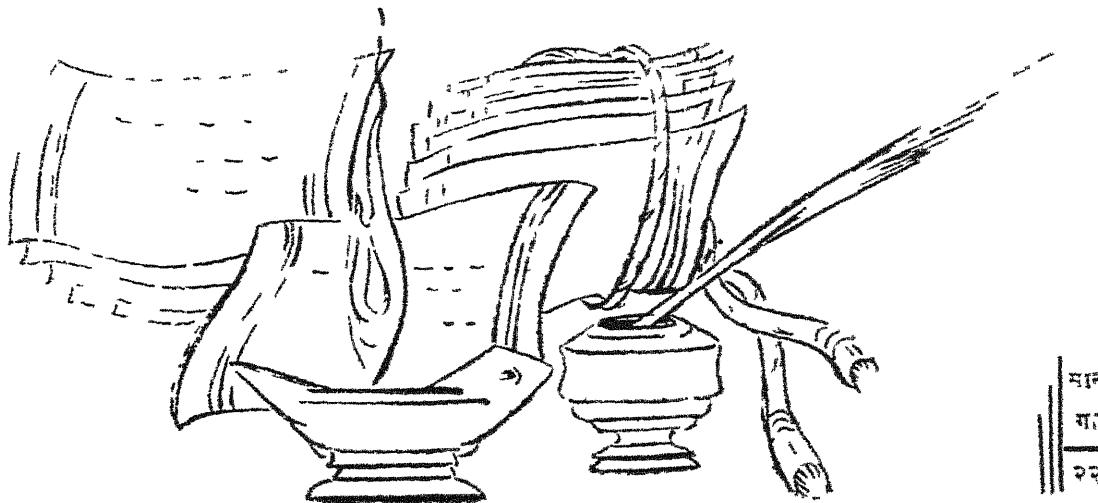
सुरभि बन पिय जायगा पट--
मूँद ले दृग-द्वार के!

तिमिर में बन रश्मि-संसृति,
रूपमय रँगमय निराकृति,
निकट रह कर भी अगम-गति,

पिय बनेगा प्रात ही तू
गा न विहग-कुमारिके!

क्षितिज की रेखा घुले धुल,
निमिष की सीमा मिटे मिल,
रूप के बन्धन गिरें खुल,

निशि मिटा दे अश्रु से
पदचिह्न आज विहान के!
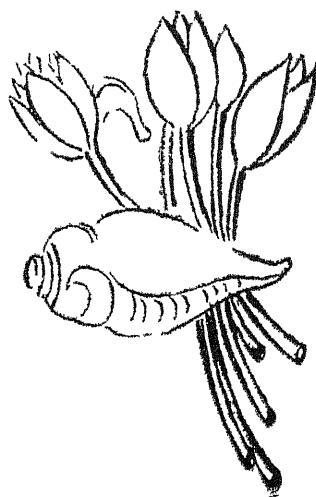
री कुंज की शेफालिके!

मैं नीर भरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली!

मेरा पग पग संगीत भरा
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,

नभ के नव रंग बुनते दुकूल
छाया में मलय-बयार पली!

• मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल

रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली!

पथ को न मलिन करता आना
पद-चिह्न न दे जाता जाना

सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली!

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!

आज मेरे नयन के तारक हुए जलजात देखो!

अलस नभ के पलक गीले,
कुन्तलो से पोछ आई,
सघन बादल भी प्रलय के
श्वास से मै बाँध लाई,

पर न हो निस्पन्दता मे चचला भी स्नात देखो!

मूक प्राणायाम मे लय—
हो गई कम्पन अनिल की,
एक अचल समाधि मे थक,
सो गई पुलके सलिल की,

प्रात की छबि ले चली आई नशीली रात देखो!

आज बेसुध रोम रोमो—
मे हुई वह चेतना भी,
मूर्च्छिता है एक प्रहरी सी
सजग चिर वेदना भी,

रश्मि से हौले चले जाओ न हो उत्पात देखो!

एक सुधि-सम्बल तुम्ही से,
प्राण मेरा माँग लाया,
तोल करती रात जिसका,
मोल करता प्रात आया,

दे बहा इसको न करुणा की कही बरसात देखो!

एकरस तम से भरा है,
एक मेरा शून्य आँगन,
एक ही निष्कम्प दीपक—
से दुकेला हो रहा मन;

आज निज पदचाप की भेजो न झझावात देखो!

प्राण-रमा पतझार सजनि अब नयन बसी बरसात री !

वह प्रिय दूर पन्थ अनदेखा,
श्याम मिटाते स्मृति की रेखा,

पथ बिन अन्त, पथिक छायामय,
साथ कुहकिनी रात री !

संकेतों में पल्लव बोले,
मृदु कलियों ने आँसू तोले,

असमंजस में डूब गया,
आया हँसता जो प्रात री !

नभ पर दुख की छाया नीली,
तारों की पलकें हैं गीली,

रोते मुझ पर मेघ,
आह रूँधे फिरता है वात री !

लघु पल युग का भार सँभाले,
अब इतिहास बने हैं छाले,

स्पन्दन गद्गद व्यथा की पाती
दृग नयन-जलजात री !

झिलमिलाती रात मेरी !
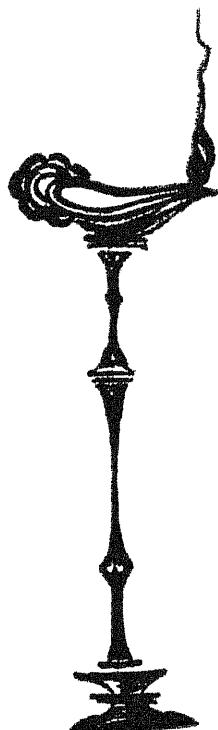
साँझ के अन्तिम सुनहले
हास सी चुपचाप आकर,
मूक चितवन की विभा—
तेरी अचानक छू गई भर,

बन गई दीपावली तब आँसुओ की पाँत मेरी !

अश्रु घन के बन रहे स्मित
सुप्त वसुधा के अधर पर,
कज मे साकार होते
वीचियो के स्वप्न सुन्दर,

मुस्करा दी दामिनी मे साँवली बरसात मेरी !

क्यो इसे अम्बर न निज
सूने हृदय मे आज भर ले ?
क्यो न यह जड मे पुलक का,
प्राण का सचार कर ले ?

है तुम्हारी श्वास के मधु-भार-मन्थर वात मेरी !
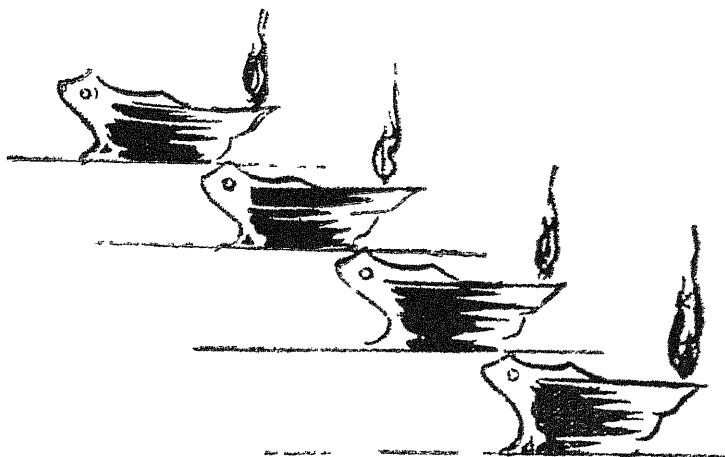
दीप तेरा दामिनी!
चपल चितवन-ताल पर बुझ बुझ जला री मानिनी!

गन्धवाही गहन कुन्तल
तूल से मृदु धूम-श्यामल,
घुल रही इनमें अमा ले आज पावस-यामिनी!

इन्द्रधनुषी चीर हिल हिल,
छाँह सा मिल धूप सा खिल,
पुलक से भर भर चला नभ की समाधि विरागिनी!

कर गई जब दृष्टि उन्मन
तरल सोने में धुले कण
छा गई क्षण में धरा-नभ में सजल दीपक-रागिनी!

तोलते कुरबक सलिल-घन
कण्टकित है नीप का तन,
उड़ चली बक-पाँत तेरी चरण-ध्वनि-अनुसारिणी!

रुन झुन मंजीर का स्वन
अलस पग धर सँभल गिन गिन,
है अभी झपकी सजनि सुधि विकल क्रन्दनकारिणी!
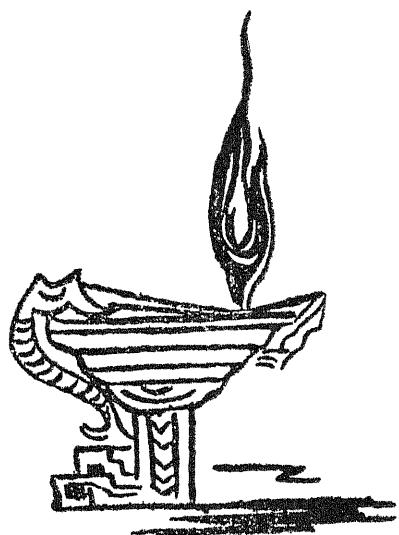
फिर विकल हैं प्राण मेरे !

तोड दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है !
जा रहे जिस पथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?

क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरे श्वास घेरे ?

सिन्धु की निःसीमता पर लघु लहर का लास कैसा !
दीप लघु शिर पर धरे आलोक का आकाश कैसा !

दे रही मेरी चिरन्तनता
क्षणों के साथ फेरे !

बिम्बग्राहकता कणों को शलभ को चिर साधना दी,
पुलक से नभ भर धरा को कल्पनामय वेदना दी,

मत कहो हे विश्व ! 'झूठे
हैं अतुल वरदान तेरे' !

नभ डुबा पाया न अपनी बाढ मे भी क्षुद्र तारे,
ढूँढने करुणा मृदुल घन चीर कर तूफान हारे,

अन्त के तम मे बुझे क्यो
आदि के अरमान मेरे !

मेरी है पहेली बात!

रात के झीने सितांचल-
में बिखर मोती बने जल,
स्वप्न पलकों में विचर झर
प्रात होते अश्रु केवल!
सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात!

मुस्करा कर राग मधुमय
वह लुटाता पी तिमिर-विष,
आँसुओं का क्षार पी मैं
बाँटती नित स्नेह का रस!
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ, मधुर जितना प्रात!

ताप-जर्जर विश्व-उर पर—
तूल से घन छा गये भर
दुःख से तप हो मृदुतर
उमड़ता करुणाभरा उर!
सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात!

चिर सजग आँखे उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओ मे मौन अलसित व्योम रो ले,

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत्-शिखाओ म निठुर तूफान बोले !

पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड आना !
जाग तुझको दूर जाना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पन्थ की बाधा बनेगे तितलियो के पर रँगीले ?

विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?

तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण मे धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?

सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया ?

अमरता-सुत चाहता क्या मृत्यु को उर मे बसाना ?
जाग तुझको दूर जाना !

कह न ठंडी साँस मे अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग मे सजेगा आज पानी,

हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !

है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !
जाग तुझको दूर जाना !

कीर का प्रिय आज पिजर खोल दो !

हो उठी है चचु छूकर,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर,
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,
सिहरता जड़ मौन पिजर !

आज जड़ता मे इसी की बोल दो !

जग पड़ा छू अश्रु-धारा,
हत परो का विभव सारा,
अब अलस बन्दी युगो का—
ले उड़ेगा शिथिल कारा !

पङ्ख पर वे सजल सपने तोल दो !

क्या तिमिर कैसी निशा है !
आज विदिशा ही दिशा है,
दूर-खग आ निकटता के
अमर बन्धन मे बसा है !

प्रलय घन में आज राका घोल दो !

चपल पारद सा विकल तन,
सजल नीरद सा भरा मन,
नाप नीलाकाश ले जो—
बेड़िया का माप यह बन,

एक किरण अनन्त दिन की मोल दो !

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं!

श्वास में मुझको छिपा कर वह असीम विशाल चिर घन,
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन

छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ बुझ जली चल दामिनी मैं!

छाँह को उसकी सजनि नव आवरण अपना बनाकर,
धूलि में निज अश्रु बोने में पहर सूने बिताकर,

प्रात में हँस छिप गई
ले छलकते दृग यामिनी मैं!

मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल गुण्ठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल-कण

सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं!

दीप सी युग युग जलूँ पर वह सुभग इतना बना दे,
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे!

वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं!

सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु ससीम सा यह,

रजकणों में खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी मैं?

ओ अरुण वसना !
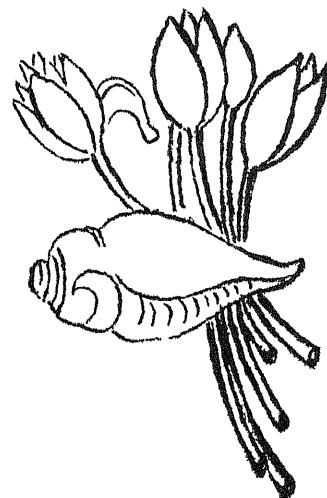
तारकित नभ-सेज से वे
रश्मि-अप्सरियाँ जगाती,

अगरु-गन्ध बयार ला ला
विकच अलको को बसाती !

रात के मोती हुए पानी हँसी तू मुकुल-दशना !

छू मृदुल जावक-रचे पद
हो गये सित मेघ पाटल;

विश्व की रोमावली
आलोक-अंकुर सी उठी जल !

बाँधने प्रतिध्वनि बढ़ी लहरें बजी जब मधुप-रशना !

बन्धनो का रूप तम ने
रात भर रो रो मिटाया,

देखना तेरा क्षणिक फिर
अमिट सीमा बाँध आया !

दृष्टि का निक्षेप है बस रूप-रङ्गो का बरसना !

है युगो की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया,

आज लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम मे समाया !

राग छलकाती हुई तू आज इस पथ मे न हँसना !

तब अब वरदान कैसा!

बेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है!
मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है!

छीन सब मीठे क्षणों को,
इन अथक अन्वेषणों को,

आज लघुता ले मुझे
दोगे निठुर प्रतिदान कैसा!

जन्म से यह साथ है मैंने इन्हीं का प्यार जाना,
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना,

इन्द्रधनु से नित सजी सी,
विद्यु-हीरक से जड़ी सी,

मैं भरी बदली रहूँ
चिर मुक्ति का सम्मान कैसा!

युग-युगान्तर की पथिक मैं छू कभी लूँ छाँह तेरी,
ले फिरूँ सुधि दीप सी, फिर राह में अपनी अँधेरी,

लौटता लघु पल न देखा
नित नये क्षण-रूप-रेखा,

चिर बटोही मैं, मुझे
चिर पंगुता का दान कैसा!

तट पर हो स्वर्ण-तरी तेरी
लहरों में प्रियतम की पुकार,

फिर कवि हमको क्या दूर देश
कैसा तट क्या मँझधार पार?

दिव में लावे फिर विश्व जाग
चिर जीवन का वरदान छीन!

गाया तुमने 'है मृत्यु मूक
जीवन सुख-दुखमय मधुर गान',

सुन तारों के वातायन में
झाँके शत शत अलसित विहान!

लाई भर अंचल में अनाम
प्रतिध्वनि का कण कण बीन बीन!

•

दमकी दिगन्त के अधरों पर
स्मित की रेखा सी क्षितिज-कोर,

आगये एक क्षण में समीप
आलोक-तिमिर के दूर छोर!

घुल गया अश्रु अरुणमें हास
होगई हार में जय विलीन!

•
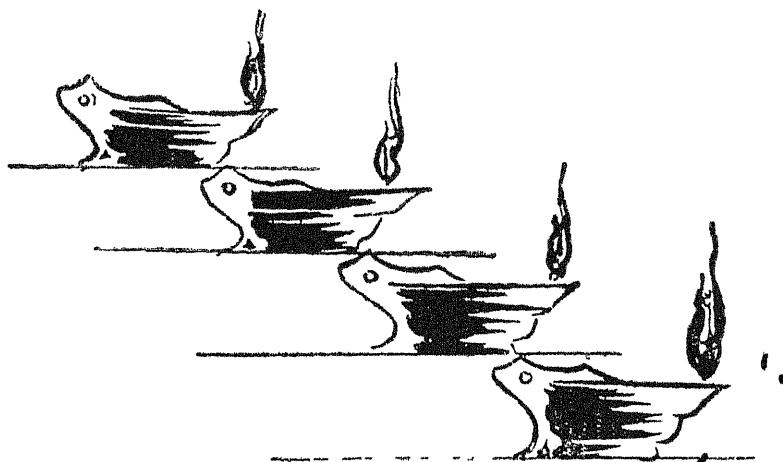
यह सन्ध्या फूली सजीली!

आज बुलाती हैं विहगों को नीड़ें बिन बोले,
रजनी ने नीलम-मन्दिर के वातायन खोले,

एक सुनहली-ऊर्म्मि क्षितिज से टकराई बिखरी,
तम ने बढ़कर बीन लिए, वे लघु कण बिन तोले!

अनिल ने मधु-मदिरा पी ली!

मुरझाया वह कंज बना जो मोती का दोना;
पाया जिसने प्रात उसी को है अब कुछ खोना,

आज सुनहली रेणु मली सस्मित गोधूली ने,
रजनीगन्धा आँज रही है नयनों में सोना!

हुई विद्रुम वेला नीली!

मेरी चितवन खींच गगन के कितने रँग लाई !
शतरंगों के इन्द्रधनुष सी स्मृति उर में छाई,

राग-विरागों के दोनों तट मेरे प्राणों में,
श्वासें छूतीं एक, अपर निश्वासें छू आईं !

अधर सस्मित पलकें गीली !

भाती तम की मुक्ति नहीं, प्रिय रागों का बन्धन,
उड़ उड़ कर फिर लौट रहे हैं लघु उर में स्पन्दन

क्या जीने का मर्म यहाँ मिट मिट सबने जाना ?
तर जाने को मृत्यु कहा क्यों बहने को जीवन ?

सृष्टि मिटने पर गर्वीली !

जाग जाग सुकेशिनी री !

अनिल ने आ मृदुल हौले,
शिथिल वेणी-बन्ध खोले,

पर न तेरे पलक डोले,

बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वरवेषिनी री !

छाँह में अस्तित्व खोये,
अश्रु से सब रङ्ग धोये,

मन्दप्रभ दीपक सजोये,

पन्थ जिसका देखती तू अलस
स्वप्न-निमेषिनी री !

रजत-तारों में घटा बुन,
गगन के चिर दाग गिन गिन

श्रान्त जग के श्वास चुन चुन,

सो गई क्या नींद का अज्ञात—
पथ-निर्देशिनी री ?

दिवस की पद-चाप चंचल,
श्रान्ति में सुधि-सी मधुर चल,
आ रही है निकट प्रतिपल,

निमिष में होगा अरुण जग
ओ विराग-निवेशिनी री !

रूप-रेखा-उलझनों में,
कठिन सीमा-बन्धनों में,
जग बँधा निष्ठुर क्षणों में,

अश्रुमय कोमल कहाँ तू
आ गई परदेशिनी री !

तब क्षण क्षण मधु-प्याले होंगे !

जब दूर देश उड़ जाने को
दृग-खजन मतवाले होंगे !

दे आँसू-जल स्मृति के लघु कण,
मैंने उर-पिंजर में उन्मन,

अपना आकुल मन बहलाने
सुख-दुख के खग पाले होंगे !

जब मेरे शूलों पर शत शत,
मधु के युग होंगे अवलम्बित,
मेरे क्रन्दन से आतप के—
दिन सावन हरियाले होंगे !

यदि मेरे उड़ते श्वास विकल,
उस तट को छू आवे केवल,

मुझ में पावस रजनी होगी
वे विद्युत् उजियाले होंगे !

जब मेरे लघु उर में अम्बर,
नयनों में उतरेगा सागर,
तब मेरी कारा में झिलमिल
दीपक मेरे छाले होंगे !

आज सुनहली वेला!

आज क्षितिज पर जाँच रहा है तूली कौन चितेरा?
मोती का जल सोने की रज विद्रुम का रंग फेरा!

क्या फिर अंजन में,
मारुत गगन में
फैल मिटा देगा इसको
रजनी का श्याम अकेला?

लघु कठो के कलरव से ध्वनिमय अनन्त अम्बर है,
पल्लव बुद्‌बुद् और गले सोने का जग सागर है,

शून्य अक भर—
रहा सुरभि-उर,
क्या सूना तम भर न सकेगा
यह रागो का मेला!

विद्रुमपंखी मेघ इन्हें भी क्या जीना क्षण भर हो?
गोधूली-तम का परिणय है तम की एक लहर ही!

क्यो पथ मे मिल,
युग युग प्रतिपल,
सुख ने दुख, दुख ने सुख के—
वर अभिशापो को झेला?

कितने भावों ने रँग डालीं सूनी साँसे मेरी,
स्मित में नव प्रभात चितवन मे सन्ध्या देती फेरी,

उर जलकणमय,
सुधि रङ्गोमय,
देखूँ तो तम बन आता है
किस क्षण वह अलबेला!

नव घन आज बनो पलको मे !
पाहुन अब उतरो पलको मे !

तम-सागर मे अङ्गारे सा,
दिन बुझता टूटे तारे सा,

फूटो शत शत विद्यु-शिखा से
मेरी 'इन सजला पुलको मे !

प्रतिमा के दृग सा नभ नीरस,
सिकता-पुलिनो सी सूनी दिश,

भर भर मन्थर सिहरन कम्पन
पावस से उमडो अलको मे !

जीवन की लतिका दुख-पतझर,
गए स्वप्न के पीत पात झर

मधुदिन का तुम चित्र बनो अब
सूने क्षण क्षण के फलको मे !
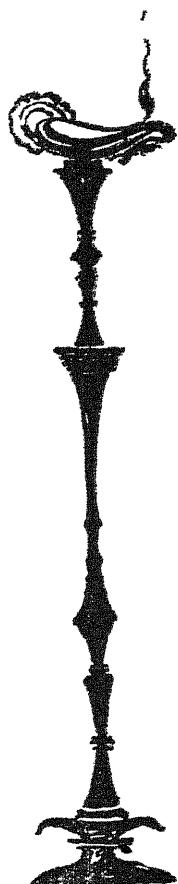
क्या जलने की रीति शलभ समझा दीपक जाना?

घेरे हैं बन्दी दीपक को
ज्वाला की वेला,
दीन शलभ भी दीप-शिखा से
सिर धुन धुन खेला!

इसका क्षण सन्ताप भोर उसको भी बुझ जाना!

इसके झुलसे पंख धूम की
उसके रेख रही,
इसमें वह उन्माद न उसमें
ज्वाला शेष रही!

जग उसको चिर तृप्ति कहे या समझे पछताना?
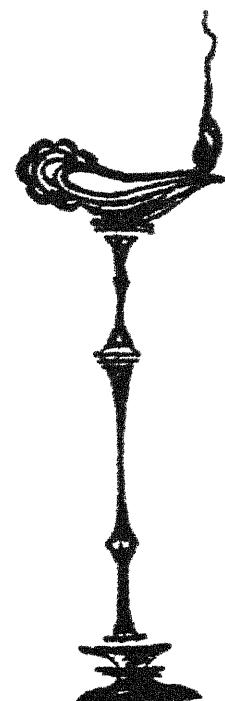
प्रिय मेरा चिर दीप जिसे छू
जल उठता जीवन,
दीपक का आलोक शलभ
का भी इसमें क्रन्दन!

युग युग जल निष्कम्प इसे जलने का वर पाना!

धूम कहाँ विद्युत्-लहरों से
है निश्वास भरा,
झंझा की कम्पन देती
चिर जागृति का पहरा!

जाना उज्ज्वल प्रात न यह काली निशि पहचाना!

सपनों की रज आँज गया नयनों में प्रिय का हास !
अपरिचित का पहचाना हास !

पहनो सारे शूल ! मृदुल
हँसती कलियों के ताज,

निशि ! आ आँसू पोंछ
अरुण सन्ध्या-अंशुक में आज,

इन्द्रधनुष करने आया तम के श्वासों में वास !

सुख की परिधि सुनहली घेरे
दुख को चारों ओर,

भेंट रहा मृदु स्वप्नों से
जीवन का सत्य कठोर !

चातक के प्यासे स्वर में सौ सौ मधु रचते रास !

मेरा प्रतिपल छू जाता है
कोई कालातीत;

स्पन्दन के तारों पर गाती
एक अमरता गीत ?

भिक्षुक सा रहने आया दृग-तारक में आकाश !
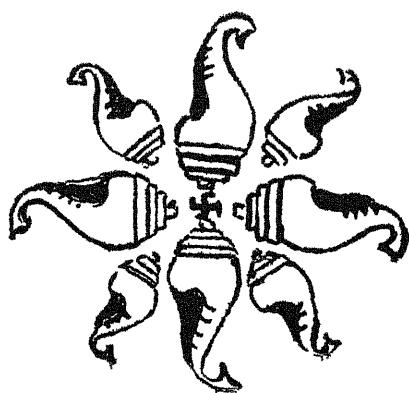
क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन!

बन गया तम-सिन्धु का, आलोक सतरङ्गी पुलिन सा,
रजभरे जगबाल से है, अंक विद्युत् का मलिन सा

स्मृति पटल पर कर रहा अब
वह स्वयं निज रूप-अंकन!

चाँदनी मेरी अमा का भेंटकर अभिषेक करती,
मृत्यु-जीवन के पुलिन दो आज जागृति एक करती

हो गया अब दूत प्रिय का
प्राण का सन्देश-स्पन्दन!

सजनि मैंने स्वर्णपिंजर में प्रलय का वात पाला,
आज पुंजीभूत तम को कर, बना डाला उजाला;

तूल से उर में समा कर
हो रही नित ज्वाल चन्दन!

आज विस्मृति-पन्थ मे निधि से मिले पदचिह्न उनके
वेदना लौटा रही है विफल खोये स्वप्न गिनके,

घुल हुई इन लोचनो में
चिर प्रतीक्षा पूत अंजन !

आज मेरा खोज-खग गाता चला लेने बसेरा,
कह रहा सुख अश्रु से 'तू है चिरन्तन प्यार मेरा',

बन गए बीते युगो को
विकल मेरे श्वास स्पन्दन !

बीन बन्दी तार की झकार है आकाशचारी,
धूलि के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिरहारी,

बाँधती निर्बन्ध को मै
बन्दिनी निज बेडियाँ गिन !
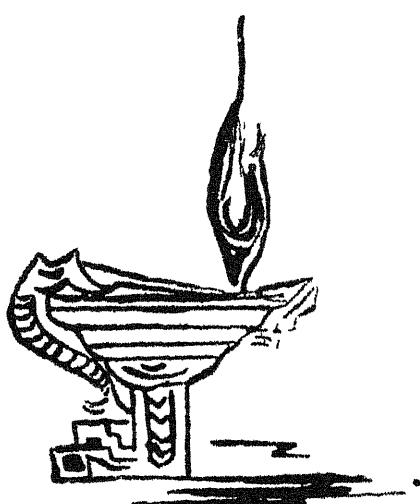
नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा,
पुलक-पङ्खी विरह पर उड आ रहा है मिलन मेरा,

कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन !

हे चिर महान्!

यह स्वर्णरश्मि छू श्वेतभाल,
बरसा जाती रङ्गीन हास,

सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास!

पर रागहीन तू हिमनिधान!

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिए है दीन क्षार,

मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार!

कितने मृदु कितने कठिन प्राण!

टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार हार,

बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुनकर जलते कण की पुकार!

सुख से विरक्त दुख में समान!

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप

तन तेरी साधकता छू ले
मन ले करुणा की थाह नाप!

उर में पावस दृग में विहान!

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी।
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी!

किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
है एक मुझे मधुमय विषमय,

मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय!

पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकें लहरी!

जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन, गह्वर,

प्रिय के सन्देशों के वाहक,
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुजभर,

मेरी लघु पलकों से छलकी
इस कण कण में ममता बिखरी!

अरुणा ने यह सीमन्त भरी,
सन्ध्या ने दी पद में लाली,

मेरे अंगों का आलेपन
करती राका रच दीवाली!

जग के दागों को धो धो कर
होती मेरी छाया गहरी!

पद के निक्षेपों से रज में—
नभ का वह छायापथ उतरा,

श्वासों से घिर आती बदली
चितवन करती पतझार हरा!

जब मैं मरु में भरने लाती
दुख से, रीती जीवन-गगरी!

कोकिल गा न ऐसा राग!
मधु की चिर प्रिया यह राग!
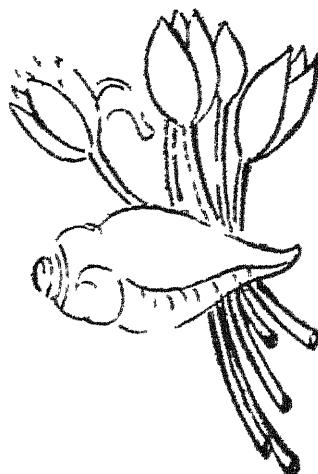
उठता मचल सिन्धु-अतीत,
लेकर सुप्त सुधि का ज्वार,
मेरे रोम में सुकुमार
उठते विश्व के दुख जाग!

झूमा एक ओर रसाल,
काँपा एक ओर बबूल,
फूटा बन अनल के फूल
किंशुक का नया अनुराग!

दिन है अलस मधु से स्नात,
रातें शिथिल दुख के भार,
जीवन ने किया शृङ्गार
लेकर सलिल-कण औ' आग!
यह स्वर-साधना ले बात,
बनती मधुरकटु, प्रतिवार,
समझा फूल मधु का प्यार
जाना शूल करुण विहाग!

जिसमें रमी चातक-प्यास,
उस नभ में बस क्यों गान,
इसमें है मदिर वरदान
उसमें साधनामय त्याग!
जो तू देख ले दृग आर्द्र,
जग के नमित जर्जर प्राण,
गिन ले अधर सूखे म्लान,
तुझको भार हो मधु-राग!

तिमिर में वे पदचिह्न मिले।

युग युग का पन्थी आकुल मन,

बाँध रहा पथ के रजकण चुन

श्वासों में रूँधे दुख के पल

बन बन दीप चले।

अलसित तन में, विद्युत-सी भर,

वर बनते मेरे श्रम-सीकर,

एक एक आँसू में शत शत

शतदल-स्वप्न खिले।

सजनि प्रिय के पदचिह्न मिले।

नीहार

[प्रथम याम]

विषय	पृष्ठ

रश्मि

[द्वितीय याम]

नीरजा

[तृतीय याम]

विषय	पृष्ठ

सान्ध्य-गीत

[चतुर्थ याम]

विषय	पृष्ठ
चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना	२३४
कीर का प्रिय आज पिञ्जर खोल दो	२३६
प्रिय चिरन्तन है सजनि	२३७
ओ अरुण वसना!	२३८
देव अब वरदान कैसा?	२३९
तन्द्रिल निशीथ में ले आये	२४०
यह सन्ध्या फूली सजीली	२४२
जाग जाग सुकेशिनी री	२४४
तब क्षण क्षण मधु प्याले होंगे	२४६
आज सुनहली वेला	२४७
नवघन आज बनो पलकों में	२४८
क्या जलने की रीति शलभ समझा दीपक जाना?	२४९
सपनों की रज आँज गया नयनों में प्रिय का हास	२५०
क्या मुझे प्रिय हो न बन्धन?	२५१
हे चिर महान्	२५३
सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी!	२५४
कोकिल गा न ऐसा राग	२५५
तिमिर में वे पद-चिह्न मिले	२५६